सुवर्णपुरीके स्वाध्यायमंदिरकी दीवारोंके चित्रों पर आधारित

जैन पौराणिक लघुकथाएँ

(भाग-१)

: प्रकाशक :

श्री दिगम्बर जैन स्वाध्यायमन्दिर ट्रस्ट,

सोनगढ़-364 250 (सौराष्ट्र)

भगवानश्रीकुन्दकुन्द-कहानजैनशास्त्रमाला, पुष्प-२२८

ॐ

नमः सद्गुरुवे।

सुवर्णपुरीके स्वाध्यायमंदिरकी दीवारोंके चित्रों पर आधारित

जैन पौराणिक लघुकथाएँ

(भाग-१)

: प्रकाशक :

श्री दिगम्बर जैन स्वाध्यायमन्दिर ट्रस्ट,

सोनगढ़-364 250

website : www.kanjiswami.org

Email : contact@kanjiswami.org

प्रथम आवृत्ति प्रत : २००० वि. सं. २०६७ ई.स. २०१०

जैन पौराणिक लघुकथाएँ (हिन्दी)के
स्थायी प्रकाशन पुरस्कर्ता
मुदित निजेश शाह
हस्ते जितेन्द्र व्रजलाल शाह
घाटकोपर–मुंबई

यह पुस्तकका लागत मूल्य रु. 43=50 है। मुमुक्षुओंकी आर्थिक सहायतासे इस आवृत्तिकी किंमत रु. 25=00 रखी गई है।

मूल्य : रु. 25=00

मुद्रक :
कहान मुद्रणालय
जैन विद्यार्थी गृह कम्पाउण्ड,
सोनगढ-३६४२५० ✆ : (02846) 244081

श्री दिगम्बर जैन स्वाध्यायमन्दिर ट्रस्ट, सोनगढ़ - 364250

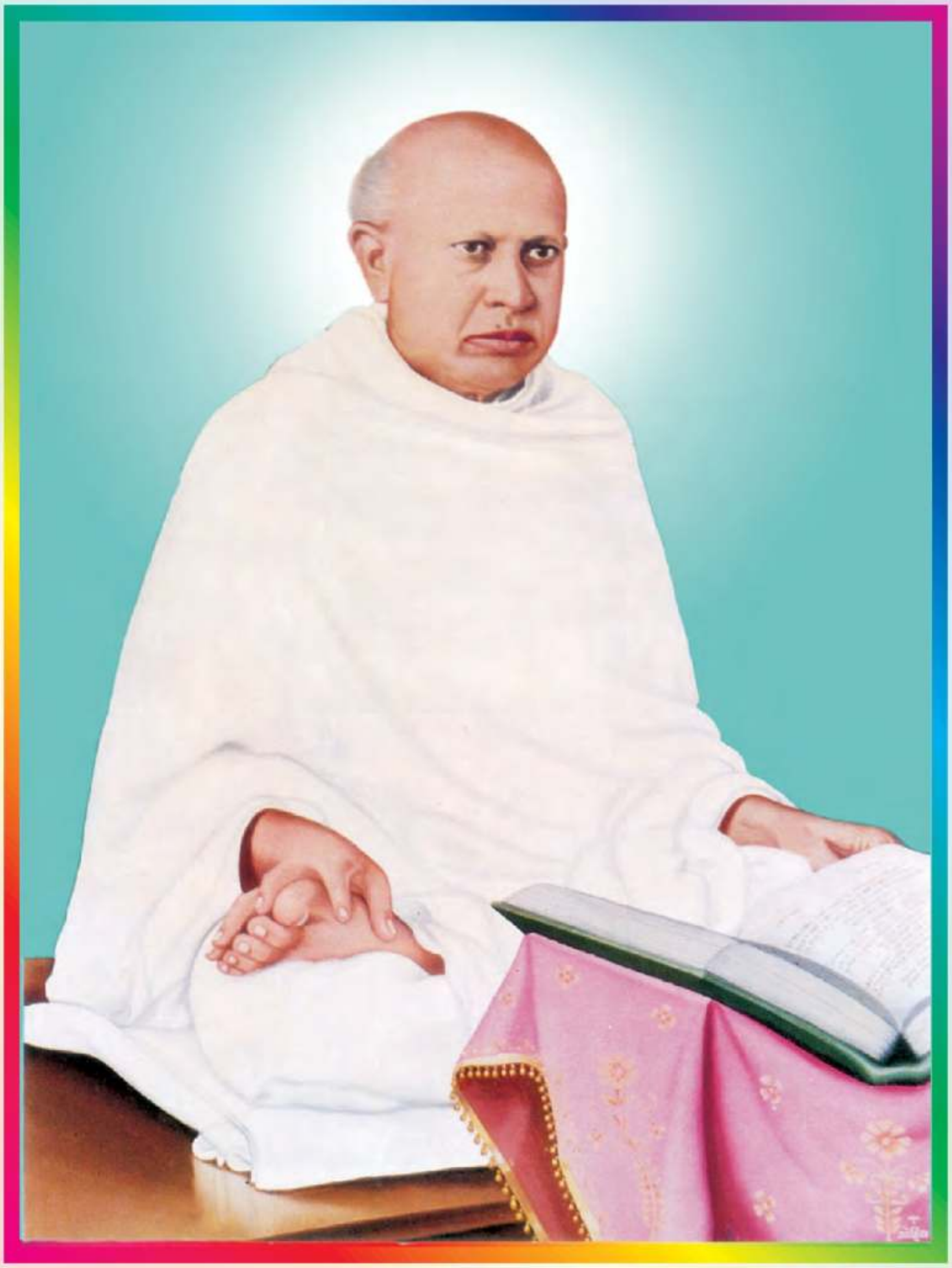

परम पूज्य अध्यात्ममूर्ति सद्‌गुरुदेव श्री कानजीस्वामी

Shri Digambar Jain Swadhyay Mandir Trust, Songadh - 364250

प्रकाशकीय निवेदन

परमोपकारी अध्यात्मयुगस्रष्टा, आत्मानुभवी सत्पुरुष पूज्य सद्गुरुदेवश्री कानजीस्वामीने अपनी अनुभवरससे आर्द्र वाणीमें जिनेन्द्रकथित चारों अनुयोगके सुमेलपूर्वक अध्यात्मरसगर्भित द्रव्यानुयोगकी मुख्यतासे उपदेशगंगा बहाई; जिसमें स्नान करके भरतक्षेत्रके हजारों भव्य जीव अपना आत्महित साधनेको उत्सुक बने; जिसके कारण सोनगढ़ एक अध्यात्म अतिशयक्षेत्र सुवर्णपुरीके रूपमें विश्वप्रसिद्ध तीर्थधाम बन गया। पूज्य गुरुदेवश्रीके प्रभावना उदयसे सुवर्णपुरीमें स्वाध्यायमंदिर, जिनमंदिर, समवसरण मंदिर, मानस्तंभ, प्रवचनमंडप, परमागममंदिर, नंदीश्वर जिनालय आदि भव्य जिनायतनोंकी रचना हुई। पूज्य गुरुदेवश्रीकी अनन्य भक्त, स्वानुभवविभूषित, पूज्य बहिनश्री चंपाबेनने मुख्यरूपसे उक्त आयतनोंमें अपने प्रथमानुयोगके शास्त्रज्ञानके आधारसे विविध पौराणिक चित्र उत्कीर्ण एवं चित्रांकित कराए। निर्ग्रंथ मुनि भगवंतोंके दर्शन हो ऐसे दृश्य इन चित्रोंमें उन्होंने लिए हैं, जिसमें उनकी संवेगादि भावनाओंसे आयतनोंकी शोभा बढ़ गई, एवं इन आयतनोंको दर्शन करनेवाले भाविकजनोंको सुवर्णपुरीमें विविध पुराण आधारित कथाओंसे अपनी संवेगादि भावनाओंमें वृद्धि करनेका लाभ प्राप्त हुआ।

कुछ मुमुक्षुओंकी भावनाको लक्ष्यमें लेकर सोनगढ़से प्रकाशित हिन्दी आत्मधर्ममेंसे पूज्य बहिनश्रीके अंतरमें वर्तती वीतरागी महापुरुषोंके प्रति आदर, श्रद्धा, भक्ति आदिको देखकर, मुमुक्षुओंको अंतरमें भी ऐसे ही भाव जागृत हो इस हेतुसे इन चित्रोंके आधारसे आचार्यदेवरचित पुराणोंमेंसे बालविभागमें कथाएँ लिखना प्रारंभ किया गया था। भव्य साधकजीवोंकी ये कथाएँ पढ़नेसे कुछ मुमुक्षुओंने ये कथाएँ पुस्तकके रूपमें प्रकाशित करनेकी मांग की थी। जिसके फलस्वरूप सुवर्णपुरीके स्वाध्यायमंदिरमें आलेखित सात चित्रोंकी सात कथाओंका ''जैन पौराणिक लघुकथाएँ भाग–1'' नामक यह रंगीन सचित्र पुस्तक प्रकाशित किया जाता है। आगे अन्य मंदिरोंमें आलेखित चित्रोंके आधारसे भी कथाओंके ऐसे ही पुस्तक प्रकाशित करनेकी श्री दिगंबर जैन स्वाध्यायमंदिर ट्रस्ट, सोनगढ़की भावना है ।

यह पुस्तक तैयार करनेमें बा.ब्र. श्री व्रजलालभाई शाह(वढ़वाण)ने प्रूफ संशोधन एवं उपयोगी मार्गदर्शन दिया है, अतः हम अंतरसे उनके आभारी हैं। इस पुस्तकके सुंदर चित्र श्री जयदेवभाई अग्रावतने बनाये हैं एवं पुस्तकका मुद्रण कहान मुद्रणालय द्वारा किया गया है।

इस पुस्तकमें कथायें स्वाध्यायमंदिरमें आलेखित चित्रोंके दृश्योंकी स्पष्टता स्वरूपमें ही दी गई हैं। विशेष अभ्यासके लिये जिज्ञासुओंको जैनधर्मके प्रथमानुयोगका अभ्यास करना आवश्यक है। आशा है कि मुमुक्षु समाजको यह सचित्र कथा भाग-1 महापुरुषोंके प्रति अपनी भावनामय भक्ति, आदररूप सहज जीवन गढ़नेमें कार्यकारी होगा।

श्री कुंदकुंदाचार्य 'आचार्य-पदवी दिन'
ता. 28-12-2010

साहित्यप्रकाशनसमिति
श्री दिगंबर जैन स्वाध्यायमंदिर ट्रस्ट,
सोनगढ-३६४२५० (सौराष्ट्र)

सुरेन्द्रो आवो....स्वाध्यायमंदिरे ऊतरो

(सुवर्णपुरी स्थित श्री जैन स्वाध्यायमंदिरके उद्घाटन प्रसंग पर रची गई स्तुति)

सुरेन्द्र आवो [1]गगनना स्वाध्यायमंदिरे ऊतरो;
भगवान श्री कुन्दकुन्दना जयनाद [2]गजवो जगतमां.
अध्यात्ममूर्ति 'कहान'ना जयनाद गजवो जगतमां..... 1.

गुरुराज आप पधारीने, स्वाध्याय-द्वार [3]खोलावियां;
कुन्दकुन्दकृत समयसारना जयनाद गाज्या जगतमां.....सुरेन्द्र0 2.

माँ! तुं [4]अमारी सरस्वती, स्थापन [5]थयुं मा! ताहरुं,
शी शी करुं तारी स्तुति, तुं जीवनदात्री भगवती.....सुरेन्द्र0 3.

सत्यार्थ वस्तु प्रकाशकर, शासन [6]तणा सिंह-केसरी;
कुन्दकुन्दकृता प्राभृत तणी सरिता वहावी राजवी.....सुरेन्द्र0 4.

भगवान श्री कुन्दकुन्द ने समयसारजी दातार [7]छो;
शास्त्रो तणा मर्मज्ञ छो, साक्षात् श्री गुरुकहान छो.....सुरेन्द्र0 5.

संगीत मधुर रेलाववा स्वर्गीय वाद्यो साथमां,
आवो गवैया स्वर्गना, सुवर्णना मेदानमां.....सुरेन्द्र0 6.

रे ! आवजो, सहु आवजो, ग्रंथाधिपति-गुणगानमां;
रे ! आवजो, सहु आवजो, गुरुकहानना स्तुतिगानमां;
लई भाग आज होंशथी, जयवंता होजो जीवनमां.....सुरेन्द्र0 7.

भाग्ये पधार्या भरतमां, (नित्य) गुरुजी बिराज्या स्वर्णमां;
सांनिध्य [8]मळियां संतनां, अहो ! भविक-तारणहारनां.....सुरेन्द्र0 8.

अद्भुत अनुपम ज्ञान छे, चिदरसभरी गुरुवाण छे;
महिमाभर्या गुरुराज छे, चिंतित फळ दातार छे.....सुरेन्द्र0 9.

*

---

1. गगनना = गगनके। 2. गजवो = गुंजारव करो। 3. खोलाविया = खोले। 4. अमारी = हमारी।
5. थयुं = हुआ। 6. तणा = के। 7. छो = हो। 8. मळिया = मिले।

❋ श्री जैन स्वाध्यायमंदिर परिचय ❋

पूज्य गुरुदेवश्रीका जीवन एवं उनका सदुपदेश प्रथमसे ही अध्यात्मतत्त्वसे ओतप्रोत था। वे उनके हृदयमें गहरे उतरे हुए तीर्थंकरदेवके वचनामृत मुमुक्षु श्रोताओंको प्रवचनमें परोसते और उन्हें निहाल करते। इससे जिज्ञासुओंका प्रवाह सोनगढ़की ओर बढ़ता जा रहा था। 'परिवर्तन' स्थल–'स्टार ऑफ इंड़िया'में जगह कम पड़ने लगी। ज्यादा श्रोता हो जाए तब प्रवचन रखनेमें कठिनाई होती थी। पर्युषणमें तो पहलेसे ही दूसरे स्थान पर प्रवचन रखते थे। इस तरह वहाँ उस मकानमें लोग नहीं समाते थे। इसलिए भक्तोंने वि. सं. १९९४ (ई.स. १९३८)में पूज्य गुरुदेवश्रीके प्रवचन, उनके ज्ञानध्यान एवं निवास हेतु साधनातीर्थ ''श्री जैन स्वाध्यायमंदिर''का नवनिर्माण किया। अहा! क्या उसकी भव्यता! दूरसे देखनेवालेको जैसे समुद्रमें तैरता जहाज ही न हो! ऐसा लगता था। अहो! क्या उसका आनंदकारी मंगल उद्‌घाटन अवसर!

भक्तोंके द्वारा पूज्य गुरुदेवश्रीको उसमें पधारनेकी प्रार्थना की गई तब सत्‌के प्रेमी, अत्यंत निस्पृह ऐसे वे निरागी महात्माने कहा कि ''किस क्षण वैराग्यकी धूनमें

मैं जंगलमें चला जाउँ यह मुझे मालूम नहीं, मुझे मठके रूपमें इसे संम्हालना नहीं है।'' तब भक्तोंने अश्रुओंसे आर्द्र हृदयपूर्वक अत्यंत नम्रतासह प्रार्थनापूर्वक कहा कि ''प्रभु आप जब तक चाहो तब तक रहना लेकिन हमारी भावना पूरी किजीये।'' पूज्य गुरुदेवश्री द्वारा भक्तजनोंकी विनतीको स्वीकार करनेसे भक्तोंकी भावना पूर्ण हुई।

इस भव्यप्रसंग पर भक्तोंको कोई अद्‌भुत आनंदोल्लास था। स्वाध्यायमंदिरकी शोभा-सजावट बहुत सुंदर करनेमें आई थी। उद्‌घाटनके पहलेसे ही भक्तजन

'धर्मध्वज फहराते हैं मेरे मंदिरमें,
स्वाध्यायमंदिर स्थपाए हम आंगनमें'

यह गीत गाते गाते प्रभातफेरीके रूपमें स्वाध्यायमंदिर आते और समयसारके ताक्के पास बैठकर बहुत भक्तिभावसे 'जय समयसार, जय समयसार' ये भक्तिगीत गाते थे। उद्‌घाटनके दिन जेठ कृष्णा अष्टमी, रविवार सुबहमें मुमुक्षुसंघ स्वाध्यायमंदिरमें पधारनेके लिए पूज्य गुरुदेवश्रीको बाद्यघोषके साथ शोभायात्रापूर्वक 'स्टार ऑफ इंडिया' लेने गए। वहाँसे शोभायात्रापूर्वक आते हुए पूज्य बहिनश्री चंपाबहिनके घरके पास बहिनोंका समूह, पूज्य बहिनश्रीके हाथमें चांदीके थालमें प्रतिष्ठेय 'समयसार' बिराजित करके शोभायात्रामें सम्मलित हुआ। सर्वप्रथम मांगलिकपूर्वक स्वाध्यायमंदिरका उद्‌घाटन श्री नानचंदभाई खाराके हाथों हुआ। फिर प्रवचनकक्षके भव्य ताकमें पूज्य गुरुदेवश्रीकी कृपाभीनी आज्ञासे पूज्य बहिनश्री चंपाबेनके पवित्र करकमल द्वारा 'समयसार'की भव्य प्रतिष्ठा हुई।

उस आनंदकारी प्रसंग पर प्रवचन देते हुए पूज्य गुरुदेवश्रीके अंतरमें अति उल्लास आ जाने पर उन्होंने अंतरके भक्तिभीगे अहोभावसे कहा–''समयसार भरतक्षेत्रका सर्वोत्कृष्ट शास्त्र है। उसकी प्रत्येक गाथा 'मोक्ष दे' ऐसी अद्‌भुत है! भगवान कुन्दकुन्दाचार्यदेवका हमारे पर बहुत उपकार है। ''हम तो उनके दासानुदास हैं'' फिर उन्होंने विशेषरूपसे दृढ़तापूर्वक कहा कि—'भगवान कुन्दकुन्दाचार्यदेव महाविदेहक्षेत्रमें सर्वज्ञ वीतराग श्री सीमंधर भगवानके समवसरणमें गए थे, वहाँ आठ दिन रहे थे इस विषयमें अणुमात्र भी शंका नहीं है।' श्री कुन्दकुन्दाचार्यके विदेहगमनके विषयमें उन्होंने अत्यंत दृढ़तापूर्वक भक्तिपूरित ह्रदयसे पुकार करके कहा 'कल्पना करना नहीं, ना कहना नहीं, यह बात ऐसी ही है,मानो तो भी ऐसी है, न मानो तो भी ऐसी ही है, यथातथ्य बात है अक्षरशः सत्य है, नजरों देखी प्रमाणसिद्ध है।' इस तरह उद्‌घाटनके प्रथम प्रवचनमें ही भगवान कुन्दकुन्दाचार्यदेवकी महिमाके संदर्भमें धर्मप्रभावनामें कारणभूत हो ऐसी गुप्त गंभीर बातका, पूज्य गुरुदेवश्रीने गहन संकेत किया। मानो सनातन सत्य स्वानुभूतिप्रधान वीतराग दिगंबर जैनधर्मकी पुनीत प्रभावनाका स्तंभारोपण करते हों—ऐसा कोई भव्य प्रसंग था।

उस समय पूज्य गुरुदेवश्रीको समयसारके प्रणेता भगवान श्री कुन्दकुन्दाचार्य-देवके प्रति अंतरमें बहुत भक्तिभाव उल्लसित हुआ। भक्तिभाव व्यक्त करनेके साथ दूसरा कोई गहन, गंभीर और गुप्तभावोंका संकेत भी पूज्य गुरुदेवश्रीने दिया था। उस ही दिन पवित्रात्मा चंपाबहिनको अंतरके अहोभावसे 'भगवती बहिनश्री' ऐसे बहुमानसूचक असाधारण विशेषणसे विभूषित किया था। तब ही से चंपाबहिन 'भगवती बहिनश्री चंपाबहिन' के विशेषणस्वरूप बहुमानवाचक नामसे मुमुक्षुसमाजमें प्रसिद्ध हुई।

स्वानुभवविभूषित धन्यावतार
प्रशममूर्ति पूज्य बहिनश्री चंपाबेन

तुज ज्ञानध्यानका रंग हम आदर्श रहो;
हो शिवपद तक तुज संग, माता! हाथ ग्रहो.

अनुक्रमणिका

महाबलराजाका हृदय परिवर्तन
पृष्ठ नं. 11

धर्मप्रेमी चेलना
पृष्ठ नं. 24

धन्य है ज्ञानीयोंका वैराग्य
पृष्ठ न. 33

चारित्रमोहकी आश्चर्यता
पृष्ठ नं. 36

भगवान मल्लिनाथ
पृष्ठ नं. 47

धर्मात्मा प्रद्युम्न
पृष्ठ नं. 53

धन्य वह हाथी
पृष्ठ नं. 66

महाबलराजाका हृदय परिवर्तन

मध्यलोकवर्ती जम्बूद्वीपके पश्चिम विदेहक्षेत्रमें गन्धिल नामा देश है। उसके मध्यभागमें विजयार्ध पर्वत है। उस पर्वतकी उत्तर श्रेणिमें एक 'अलकापुरी' नामक श्रेष्ठ नगरी है। कई वर्षों पूर्व उस नगरीका राजा बड़ा धर्मिष्ठ व अति पुण्यशाली था। उसका नाम 'अतिबल' था।

राजा अतिबल जैसे वीर, पराक्रमी, यशस्वी, दयालु और नीति-निपुण राजा पृथ्वीतल पर अधिक नहीं थे। उनकी नीति-निपुणता और प्रजा वत्सलता सब ओर प्रसिद्ध थी। वे कभी सूर्यके समान अत्यन्त तेजस्वी होकर शत्रुओंको सन्ताप पहुँचाते थे और कभी चन्द्रमाकी भाँति शान्त वृत्तिसे प्रजाका पालन करते थे। उनकी निर्मल कीर्ति चारों ओर फैल रही थी। राजा अतिबलके व्यक्तित्वके सामने सभी विद्याधर नरेश अपना सिर झुका देते थे। वे समुद्रसे अधिक गम्भीर थे, मेरुसे अधिक स्थिर थे, बृहस्पतिसे अधिक विद्वान थे और सूर्यसे भी अधिक तेजस्वी थे।

महाराजा अतिबलकी रानीका नाम 'मनोहरा' था। मनोहराका जैसा नाम था वैसा ही उसका सुंदर रूप भी। 'मनोहरा'के मुंहके सामने पूर्णिमाके चन्द्रमाको भी मुँहकी खानी पड़ती थी। उसका सारा शरीर तप्त सुवर्णकी तरह चमकता था। कोई उसे एकाएक देखकर विद्याधरी कहनेका साहस नहीं कर पाता था। सचमुच वह मनोहरा अद्वितीय सुन्दरी थी।

राजा अतिबल रानी मनोहराके साथ अनेक प्रकारके सुख भोगते हुए

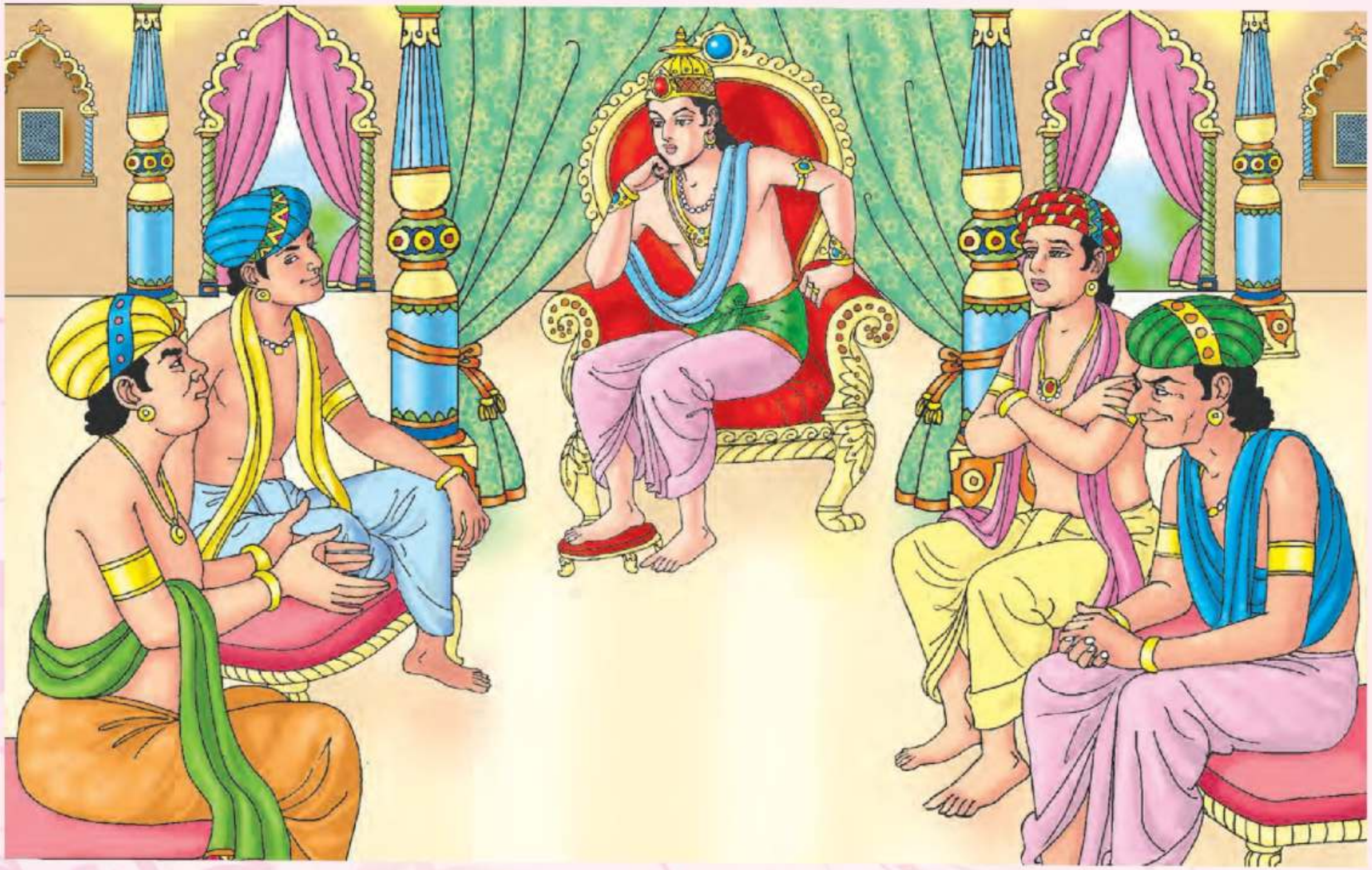

महाबल राजा उनके चार मंत्रीकी राज्य-कार्यमें सलाह लेते हैं।
उनमें स्वयंबुद्ध मंत्री जैन हैं और बाकी तीन विधर्मी हैं।

सुखसे समय बिताते थे। कुछ समय बाद मनोहराकी कुक्षिसे एक बालक उत्पन्न हुआ। बालकके जन्मकालमें अनेक शुभ शकुन हुए। राजा अतिबलने दीन दरिद्रोंके लिए किमिच्छक दान दिया और प्रजाने अनेक उत्सव मनाए। बालककी वीर चेष्टायें देखकर राजा अतिबलने उसका नाम महाबल रख दिया। बालक महाबल द्वितीयाके चन्द्रमाकी तरह दिन प्रतिदिन बढ़ने लगा। उसकी अद्भुत लीलायें देख और मीठी बोली सुनकर माँका हृदय फूला नहीं समाता था। उसकी बुद्धि बड़ी ही तीक्ष्ण थी। इसलिए उसने अल्पवयमें ही समस्त विद्यायें सीख ली। पुत्रकी चतुराई और नीति-निपुणता देखकर राजा अतिबलने उसे युवराज बना दिया और वे बहुत कुछ निश्चिंत होकर धर्म-ध्यान करने लगे।

एक दिन कारण पाकर महाराज अतिबलका हृदय संसारसे विरक्त हो गया। उन्हें पञ्चेन्द्रियोंके विषय क्षणभंगुर ओर दुःखदायी मालूम होने लगे। बारह भावनाओंका विचार कर उन्होंने जिन-दीक्षा धारण करनेका दृढ़ निश्चय कर लिया। फिर मन्त्री, सामन्त आदिके सामने अपने विचार प्रकट करके युवराज महाबलको राज्य तथा अनेक तरहके धार्मिक और नैतिक उपदेश देकर किसी निर्जन वनमें उन्होंने जिन-दीक्षा धारण कर ली। महाराज अतिबलके साथ अनेक विद्याधर राजाओंने भी जिन-दीक्षा ली थी।

महाराजा अतिबल आत्मशुद्धिके लिए कठिनसे कठिन तप करने लगे और इधर राजा महाबल भी नीतिपूर्वक प्रजाका पालन करने लगे। राजा महाबलकी शासन-प्रणाली पर समस्त प्रजा मुग्धचित्त थी। धीरे-धीरे राजा महाबलका यौवन विकसित होने लगा। उनके शरीरकी शोभा बड़ी ही विचित्र हो गई थी। उनका सुन्दर रूप देख कर स्त्रियोंका मन कामसे आकुल हो उठता था। निदान, मन्त्री आदिकी सलाहसे योग्य कुलीन

विद्याधर कन्याओंके साथ उनका विवाह हो गया। अब राजा महाबल धर्म, अर्थ और कामका समान रूपसे सेवन करने लगे। इनके महामति, सम्भिन्नमति, शतमति और स्वयंबुद्ध नामके चार मन्त्री थे। ये चारों मन्त्री राज्य कार्यमें बहुत ही चतुर थे। राजा महाबल जो भी कार्य करते थे, वह मन्त्रियोंकी सलाहसे ही करते थे; इसलिए उनके राज्यमें किसी प्रकारकी बाधायें नहीं आने पाती थीं।

उनमें स्वयंबुद्धको छोड़कर बाकी तीन मन्त्री मिथ्यादृष्टि थे, इसलिए वे राजा महाबल तथा स्वयंबुद्ध मंत्रीके साथ धार्मिक विषयोंमें विद्वेष रखा करते थे। पर राजा महाबलको राजनीतिमें उनसे कोई बाधा नहीं आती थी। स्वयंबुद्ध मन्त्री सच्चा जिन-भक्त था, वह निरन्तर राजा महाबलके हितचिन्तनमें लगा रहता था।

किसी समय अलकापुरीमें राजा महाबलकी वर्ष-गांठका उत्सव मनाया जा रहा था। बाजिंत्रोंके शब्दोंसे आकाश गूँज रहा था और चारों और स्त्रियोंके सुन्दर गीत सुनाई पड़ रहे थे। एक विशाल सभामण्डप बनवाया गया था, जिसकी सजावटके सामने इन्द्र-भवनकी भी सजावट फीकी लगती थी। उस मण्डपमें सोनेके एक ऊँचे सिंहासन पर महाराजा महाबल बैठे हुए थे। उन्हींके आस-पास मन्त्री लोग भी बैठे थे और मण्डपकी शेष जगह दर्शकोंसे खचाखच भरी हुई थी। लोगोंके हृदय आनन्दसे उमड़ रहे थे। विद्वानोंके व्याख्यान और तत्त्व-चर्चाओंसे वह सभा बहुत ही भली मालूम होती थी। समय पाकर महामति, सम्भिन्नमति और शतमति मन्त्रियोंने अनेक कल्पित युक्तियोंसे जीव-अजीवका खण्डन कर दिया, स्वर्ग-मोक्षका अभाव बतलाया तथा मिथ्यात्वको बढ़ानेवाली अनेक विपरीत क्रियाओंका उपदेश दिया, जिससे समस्त सभामें क्षोभ मच गया और लोग आपसमें काना-फूँसी

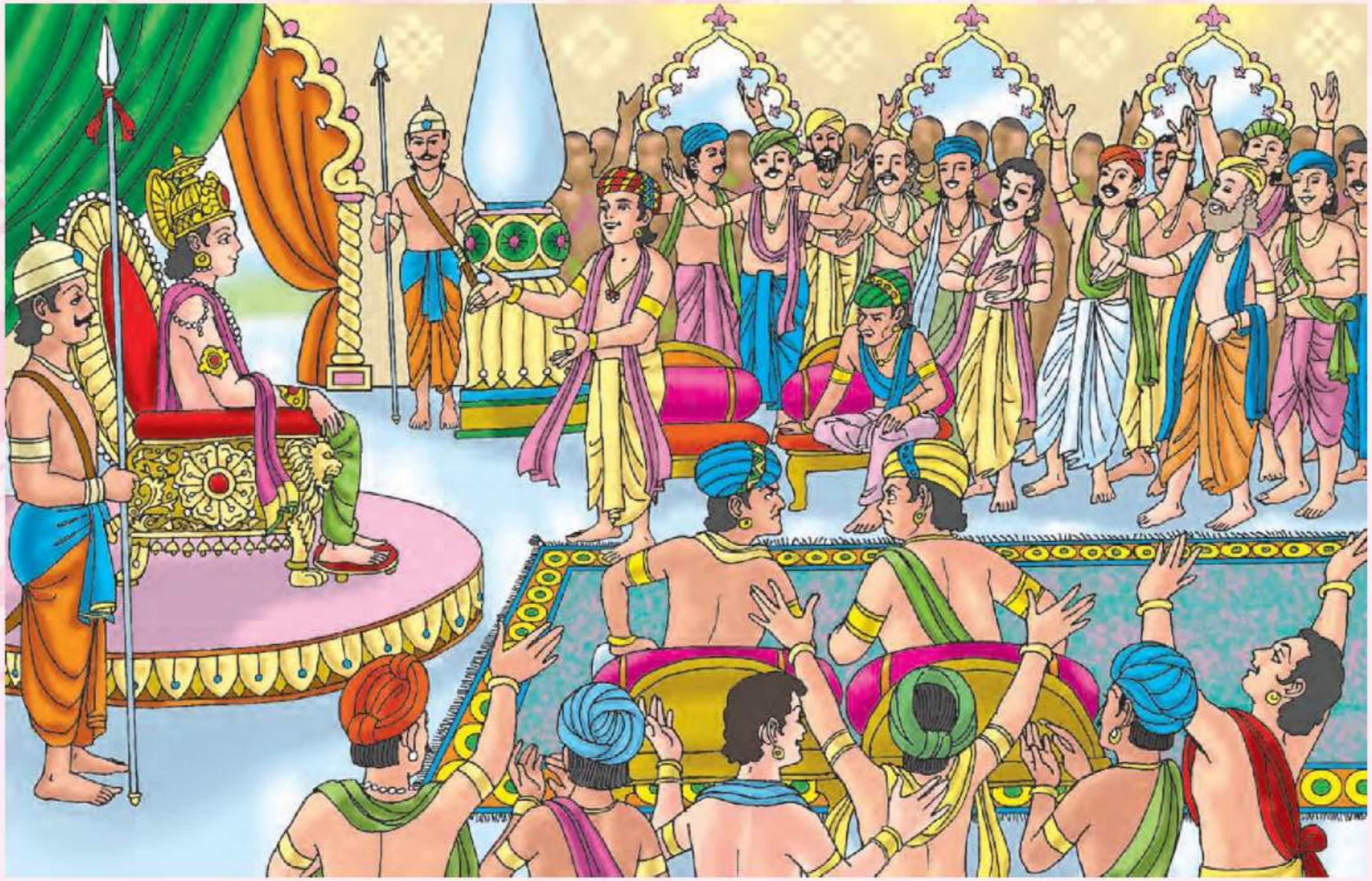

महाबल राजाका जन्मदिन राज्यसभामें बड़े महोत्सवके रूपमें मनाया जा रहा है, वहाँ उनके विधर्मी मंत्री कुयुक्तिसे जैनधर्मका खण्डन करते हैं, जबकि स्वयंबुद्ध मंत्री कुशलतासे वे कुयुक्तियोंका खण्डन करके जैनमतको यथार्थ बताते हैं। इससे सभाजन अत्यंत प्रसन्न होते हैं।

करने लगे। यह देख राजा महाबलसे आज्ञा लेकर विरोध करनेके लिए स्वयंबुद्ध मन्त्रीके खड़े होते ही सब शान्त हो गये। लोग चुपचाप उनका व्याख्यान सुनने लगे। स्वयंबुद्धने अनेक युक्तियोंसे जीव-अजीव आदि तत्त्वोंका समर्थन किया तथा स्वर्ग-मोक्ष आदि परलोकका सद्भाव सिद्ध कर दिखाया। तत्त्वप्रतिपादनके विषयमें स्वयंबुद्ध मन्त्रीके अनोखे ढंग और अकाट्य युक्तियोंसे सब लोग मोहित हो गए और धन्य धन्य कहने लगे। इसी समय स्वयंबुद्ध मंत्रीने पाप और धर्मका फल बताते हुए राजा महाबलको लक्ष्य कर निम्न प्रकारकी चार कथायें कहीं।

(१)

राजन्! कुछ समय पहिले आपके निर्मल वंशमें अरविन्द नामके एक राजा हो गये हैं। उनकी स्त्रीका नाम विजयादेवी था। विजयादेवीके दो पुत्र थे–पहला हरिचन्द्र और दूसरा कुरुविन्द। ये दोनों पुत्र बहुत ही विद्वान थे। राजा अरविन्द दीर्घ संसारी जीव थे। इसलिए उनका चित्त सतत पाप-कर्मोंमें ही लगा रहता था और इसीके फलस्वरूप वे नरक आयुका बन्ध कर चुके थे। आयुके अन्तमें राजा अरविन्दको दाह-ज्वर हो गया, जिसकी दाहसे वे बहुत व्याकुल हो गए। रोगकी बहुत कुछ चिकित्सा की गई, पर उन्हें आराम नहीं हुआ। पापके उदयसे उनकी समस्त विद्याऐं नष्ट हो गई थीं। उन्होंने उत्तर कुरुक्षेत्रके सुहावने बगीचेमें घूमना चाहा, परन्तु आकाशगामिनी विद्याके नष्ट हो जानेसे उन्हें लाचार हो रुक जाना पड़ा। बड़े पुत्र हरिचन्द्रने अपनी विद्यासे उन्हें उत्तरकुरु भेजना चाहा, पर जब उसकी विद्या भी सफल नहीं हुई, तब राजा अरविन्द हताश हो शैय्या पर पड़े रहे।

एकदिनकी घटना है कि दिवाल पर दो छिपकलीयाँ लड़ रही थीं।

लड़ते-लड़ते एककी पूंछ कट गई, जिससे खूनकी दो चार बुंदे राजा अरविन्दके शरीर पर पड़ी। खूनकी बूंदोंके पड़ते ही राजा अरविन्दको कुछ शान्ति मालूम हुई, इसलिए उन्होंने समझा कि यदि हम खूनकी बाबड़ीमें नहायें तो हमारा रोग दूर हो सकता है। यह विचार कर लघु पुत्र कुरुविन्दसे खूनकी बावड़ी बनवानेके लिए कहा। कुरुविन्द, पिताका जितना आज्ञाकारी था, उससे कहीं अधिक धर्मात्मा था। इसलिए उसने पिताकी आज्ञानुसार एक बावडी बनवाई, पर उसे खूनसे न भरकर लाखके लाल रंगसे भरवा दिया और पितासे जाकर कह दिया कि आपके कहे अनुसार बावड़ी तैयार है। खूनकी बावड़ी देखकर राजा अरविन्द बहुत ही हर्षित हुए और नहानेके लिए उसमें कूद पड़े। पर ज्योंही उन्होंने कुल्ला किया, त्यों ही उन्हें मालूम हो गया कि यह खून नहीं, किन्तु लाखका रंग है। कुरुविन्दके इस कार्य पर उन्हें इतना क्रोध आया कि वे तलवार लेकर उसे मारनेके लिए दौड़े, पर बिमारीके कारण अधिक नहीं दौड़ सके एवं बीचमें ही अपनी तलवारकी धार पर गिर पड़े। तलवारकी धारसे राजा अरविन्दका उदर विदीर्ण हो गया, जिससे वे मरकर नरकगतिमें पहुँचे। सच है–मरते समय प्राणियोंके जैसे भाव होते हैं, वैसी ही गति होती हैं।

(२)

नरेन्द्र! कुछ समय पहले आपके इसी वंशमें एक दण्ड नामके राजा हो गये हैं, जिन्होंने अपने प्रचण्ड पराक्रमसे समस्त विद्याधरोंको वशमें कर लिया था। यद्यपि राजा दण्ड शरीरसे वृद्ध हो गये थे, तथापि उनका मन वृद्ध नहीं हुआ था। वे रात-दिन विषयोंकी चाहमें लगे रहते थे। उनके मणिमाली नामका एक आज्ञाकारी पुत्र था। जीवनके शेष समयमें राज्यका भार मणिमालीको सौंपकर आप अन्तःपुरमें रहने लगे और अनेक तरहके

भोग भोगने लगे। किसी समय तीव्र संक्लेश भावसे राजा दण्डका मरण हो गया। मरकर वे अपने भण्डारमें विशालकाय अजगर हुए। वह अजगर मणिमालीके अलावा भण्डारमें किसी दूसरेको नहीं आने देता था। एक दिन मणिमालीने इस अजगरका हाल किसी मुनि महाराजसे कहा। मुनिराजने अवधिज्ञानसे जानकर कहा कि यह अजगर आपके पिता दण्ड विद्याधरका जीव है। आर्त्तध्यानके कारण उन्हें यह कुयोनि प्राप्त हुई है। यह सुनकर मणिमाली झटसे भण्डारमें गया और वहाँ अजगरके सामने बैठकर उसे ढङ्गसे समझाने लगा, जिससे उसे अपने पूर्वभवका स्मरण हो आया और विषयोंकी लालसा छूट गई। पुत्रके उपदेशसे उसने सब बैरभाव छोड़ दिया तथा आयुके अन्तमें संन्यासपूर्वक मरण कर देवपर्याय पाई। स्वर्गसे आकर देवने मणिमालीके गलेमें एक सुन्दर हार पहनाया था, जो कि आज आपके गलेमें भी शोभायमान है। सच है—विषयोंकी अभिलाषासे मनुष्य अनेक तरहके कष्ट उठाते हैं और विषयोंके त्यागसे स्वर्ग आदिका सुख पाते हैं।

(३)

राजन्! आपके बाबा शतबल भी चिरकाल तक राज्य-सुख भोगनेके बाद आपके पिता राजा अतिबलके लिए राज्य देकर धर्म-ध्यान करने लगे थे और आयुके अन्तमें समाधिपूर्वक शरीर छोड़कर माहेन्द्र स्वर्गमें देव हुए थे। आपको भी ध्यान होगा, जब हम दोनों मेरु पर्वत पर नन्दनवनमें खेल रहे थे, तब देव शरीरधारी आपके बाबाने कहा था कि 'जैन-धर्मको कभी नहीं भूलना, यही सब सुखोंका कारण है।'

(४)

इसी तरह आपके पिता अतिबलके बाबा सहस्रबल भी अपने पुत्र शतबलके लिए राज्य देकर नग्न दिगम्बर मुनि हो गये थे और कठिन

तपस्यासे आत्म-शुद्धि कर शुक्ल ध्यानके प्रतापसे परमधाम मोक्षस्थानको प्राप्त हुए थे।

ये कथाएँ प्रायः सभी लोगोंको परिचित और अनुभूत थीं, इसलिए स्वयंबुद्ध मन्त्रीकी बात पर किसीको अविश्वास नहीं हुआ। राजा और प्रजाने स्वयंबुद्धका खूब सत्कार किया। महामति आदि तीन मन्त्रियोंके उपदेशसे जो कुछ विभ्रम फैल गया था, वह स्वयंबुद्धके उपदेशसे दूर हो गया। इस तरह राजा महाबलकी वर्षगांठका उत्सव हर्ष-ध्वनिके साथ समाप्त हुआ।

एक दिन स्वयंबुद्ध मन्त्री अकृत्रिम चैत्यालयोंकी वन्दना करनेके लिए मेरु पर्वत पर गए और वहाँ पर समस्त चैत्यालयोंके दर्शन कर अपने-आपको सफल-भाग्य मानते हुए सौमनस वनमें बैठे ही थे कि इतनेमें पूर्व विदेहक्षेत्रके अन्तर्गत कच्छ देशके अनिष्ट नामक नगरसे आए हुए दो मुनिराज दिखाई पड़े। उन मुनियोंमें एकका नाम आदित्यमति और दूसरेका नाम अरिञ्जय था। स्वयंबुद्धने खड़े होकर दोनों मुनिराजोंका स्वागत किया और विनयपूर्वक प्रणाम कर तत्त्वोंका स्वरूप पूछा। जब मुनिराज तत्त्वोंका स्वरूप कह चुके, तब मन्त्रीने उनसे पूछा–हे नाथ! हमारी अलकानगरीमें सब विद्याधरोंके अधिपति जो महाबल नामके राजा राज्य करता हैं, वे भव्य हैं या अभव्य? मन्त्रीका प्रश्न सुनकर आदित्यमति मुनिराजने कहा कि हे मन्त्री! राजा महाबल भव्य है, क्योंकि भव्य ही तुम्हारे वचनोंमें विश्वास कर सकता है। तुम्हें राजा महाबल बहुत ही श्रद्धाकी दृष्टिसे देखता है। वह दसवें भवमें जम्बूद्वीपके भरतक्षेत्रमें युगका प्रारम्भ होनेपर ऋषभनाथ नामका पहला तीर्थंकर होगा। सकल सुरेन्द्र उसकी सेवा करेंगे और वह अपने दिव्य उपदेशसे संसारके समस्त प्राणियोंका कल्याण करेगा। वही उसके मुक्त होनेका समय है। अब मैं राजा महाबलके पूर्वभवका वर्णन करता हूँ,

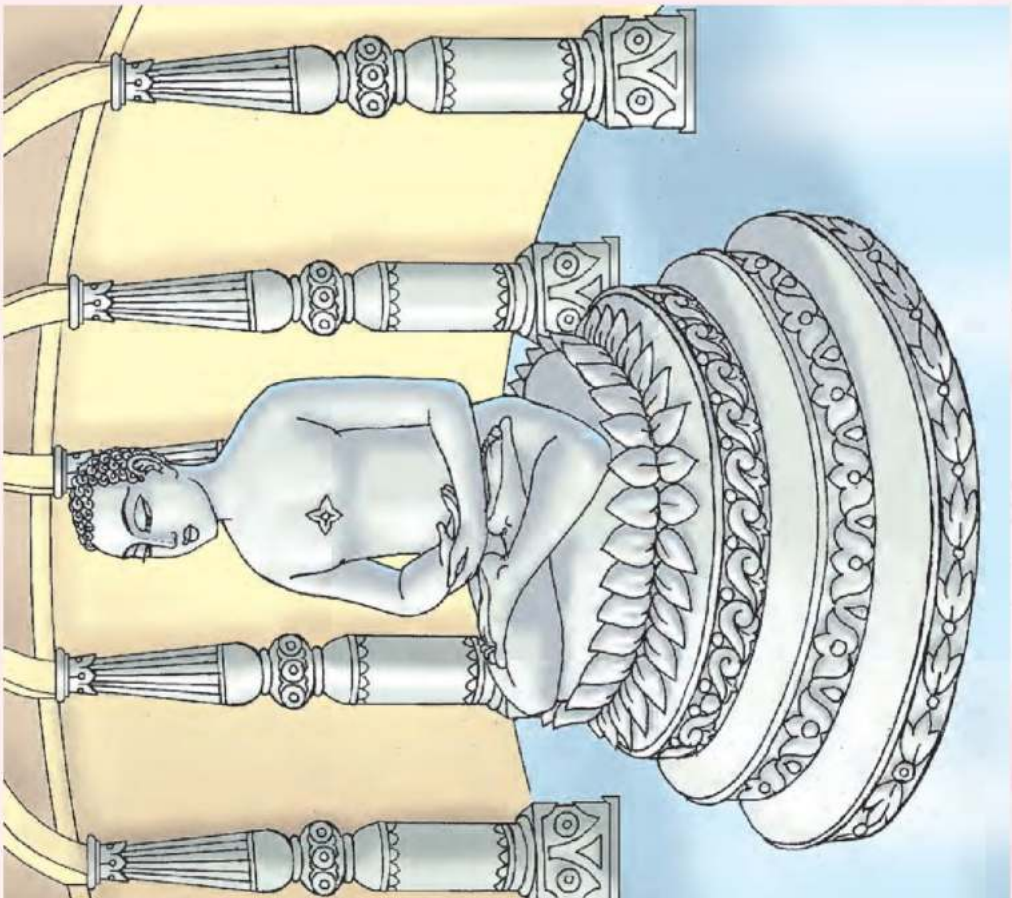

महाबल राजा के स्वयंबुद्ध मंत्री मेरु पर्वतके अकृत्रिम जिनालयोंके दर्शन-पूजन करते हैं।

जिसमें इसने सुख भोगनेकी इच्छासे धर्मका बीज बोया था। ध्यानपूर्वक सुनो—

पश्चिम विदेहमें श्रीगन्धिल नामका देश है और उसमें सिंहपुर नामका एक सुन्दर नगर है। वहाँ किसी समय राजा श्रीषेण राज्य करते थे। उनकी स्त्रीका नाम सुन्दरी था। राजा श्रीषेणके जयवर्मा और श्रीवर्मा नामके दो पुत्र थे; उनमें श्रीवर्मा नामका छोटा पुत्र सभीको प्यारा था। राजा श्रीषेणने प्रजाके आग्रहसे लघु पुत्र श्रीवर्माको राज्य दे दिया और धर्म-ध्यानमें लीन हो गए। ज्येष्ठ पुत्र जयवर्मासे यह अपमान सहा नहीं गया; इसलिए वे संसारसे उदास होकर किसी वनमें दिगम्बर मुनि हो गये और विषय-भोगोंसे विरक्त होकर उग्र तप करने लगे। एक दिन, जहाँ पर मुनिराज जयवर्मा ध्यान लगाए हुए बैठे थे, वहीं से आकाशमार्गसे विहारकरता हुआ विद्याधरोंका कोई राजा जा रहा था। ज्यों ही जयवर्माकी दृष्टि उस पर पड़ी, त्यों ही उसे राजा बननेकी अभिलाषाने फिर घर बनाया। उधर जयवर्मा राज-भोगोंकी कल्पनामें मग्न हो रहे थे, इधर बाँबीसे निकले हुए एक साँपने उन्हें डस लिया; जिससे वे मरकर राजा महाबल हुए हैं। पूर्वभवकी अतृप्त वासनासे राजा महाबल अब भी रात-दिन भोगोंमें लीन रहा करते हैं।

इस प्रकार राजा महाबलका पूर्वभव सुनानेके बाद मुनिराज आदित्यमतिने स्वयंबुद्ध मन्त्रीसे कहा कि आज राजा महाबलने स्वप्न देखा है कि उसे सम्भिन्नमति आदि मन्त्रियोंने जबर्दस्ती कीचड़में गिरा दिया है; फिर स्वयंबुद्ध मन्त्रीने उन दुष्टोंको धमकाकर उसे कीचड़से निकाला और सोनेके सिंहासन पर बैठाकर निर्मल जलसे नहलाया है तथा एक दीपककी शिखा प्रतिक्षण क्षीण होती जा रही है। राजा महाबल इन स्वप्नोंका फल

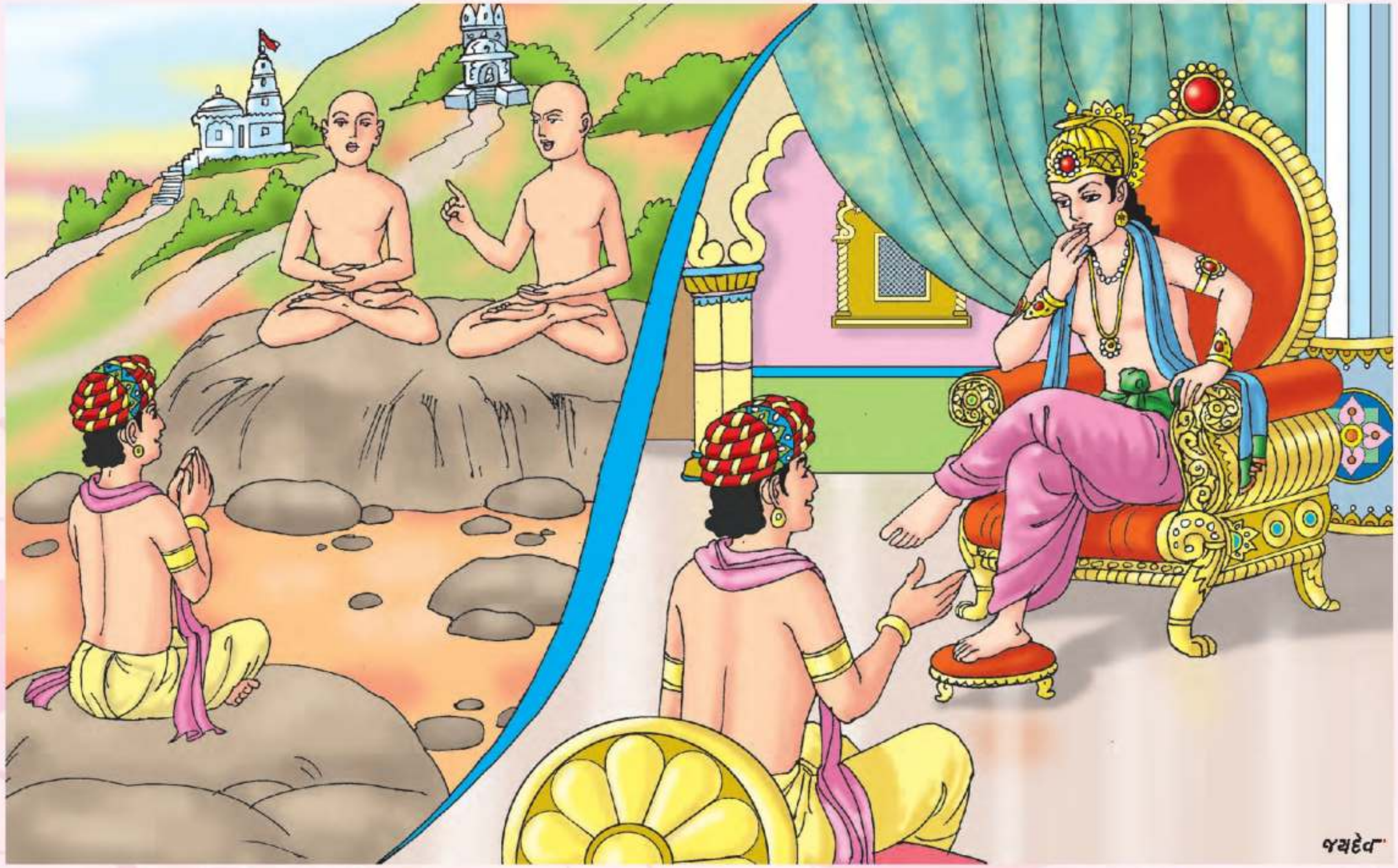

मेरु पर्वत पर स्वयंबुद्ध मंत्री विदेहसे आये हुए आदित्य मुनि तथा अरिंजय मुनिकी वंदना करते हैं, एवं उनके पाससे धर्मबोध सुनकर अपने राजा महाबलके बारेमें प्रश्न पूछकर जानकारी प्राप्त करते हैं । नगरमें आकर मुनिराजोंके साथ हुई बातचीत अपने राजाको सुनाते हैं ।

तुमसे अवश्य पूछेगा; सो तुम जाकर पूछनेके पहिले ही कह देना कि पहिले स्वप्नसे आपका सौभाग्य प्रकट होता है और दूसरे स्वप्नसे आपकी आयु एक माह बाकी रह गई मालूम होती है। ऐसा करनेसे तुम्हारे ऊपर राजाका विश्वास दृढ़ हो जायगा; तब तुम उन्हें जो भी हितका मार्ग बतलाओगे, उसे वे शीघ्र ही स्वीकार कर लेंगे। इतना कहकर दोनों मुनिराज आकाशमार्गसे विहार कर गए और स्वयंबुद्ध मन्त्री हर्षित होते हुए अलकापुरीको लौट आए। वहाँ महाबल स्वयंबुद्धकी प्रतीक्षा कर रहे थे, तो स्वयंबुद्धने शीघ्र ही जाकर उनके दोनों स्वप्नोंका फल जैसा कि मुनिराजने बतलाया था, कह सुनाया तथा उन्हें समयोपयोगी और भी धार्मिक उपदेश दिया। मन्त्रीके कहनेसे राजा महाबलको दृढ़ निश्चय हो गया कि अब उनकी आयु केवल एक माह बाकी रह गई है। वह समय अष्टाह्निकाके व्रतका था; इसलिए उसने जिनमन्दिरमें आठ दिन तक खूब उत्सव किया और शेष बाईस दिनका सन्यास धारण किया। उन्हें सन्यासविधि मन्त्री स्वयंबुद्ध बतलाते थे। अन्तमें पञ्च नमस्कार मन्त्रका जाप करते हुए राजा महाबल नश्वर मनुष्य शरीरका परित्याग कर ऐशान स्वर्गके श्रीप्रभ विमानमें देवपर्यायके अधिकारी हुए। तत्पश्चात् वहाँसे चयकर वे जम्बूद्वीपके भरतक्षेत्रके प्रथम तीर्थंकर ऋषभदेव हुए।

धर्मप्रेमी चेलना

राजा चेटककी पुत्री चेलनाको मायाचारीपूर्वक ऐसा बताया गया था कि राजा श्रेणिक जिनधर्मके बहुत ही दृढ़ श्रद्धानी हैं। अधिकांश उनका जीवन जिनप्रणीत षट्आवश्यकमें ही प्रवर्तन करनेवाला है तथा विवाहयोग्य उम्रके हैं। अनेक वैभवोंके धनी हैं व अजातशत्रु हैं। तब चेलनाके भाव उनसे विवाह करनेको उत्सुक हुए व विवाह भी किया।

जब उसने देखा कि राजमहलमें पवित्र जिनधर्मकी पूजाकी तो बात दूर रहो, कोई नाम तक लेनेवाला नहीं है; तब उसका हृदय विषादसे भर उठा। उसकी अन्तरात्मा हाहाकार कर उठी। उसकी निर्मल विवेक बुद्धि काँप उठी। वह इसी शोकमें चिन्ताग्रस्त रहने लगी। फलस्वरूप उसके विषादकी प्रगाढ़ कालिमासे उसके सर्वाङ्ग मलीन होने लगे। वह सोचने लगी—'हाय! जिस स्थानमें हिंसायुक्त तीन मूढ़ताके साथ मिथ्याज्ञानकी पूजा हो रही है, आठ प्रकारके अभिमान सहित लोक-परलोकमें दुःख प्रदान करनेवाले अन्यधर्मका बोलबाला है, वहाँ सुख-शांतिकी छायाकी कल्पना तक नहीं की जा सकती है। हाय! मैंने अभयकुमारका क्या बिगाड़ा था, जिसने छल-प्रपञ्च द्वारा धर्माचरणकी मृग-मरीचिका दिखला कर मेरे निष्कपट हृदयको अपने वाग्जालमें फँसाया। जहाँ जिनधर्मका स्मरण तक नहीं होता, वहाँ उसकी पूजा कैसी? जहाँ जिनधर्मका वास नहीं, भला उसे उत्तम स्थान कैसे कहेंगे? वह तो पक्षियोंके नीड़के समान है। महाराजा श्रेणिकके अपार धन-वैभवकी चकाचौंधमें अपना जीवन गँवानेसे तो परलोकमें घोर दुःख ही सहना पड़ेगा। सच है कि इस राजमहलमें मुझे समस्त सुख भोगनेको मिलते हैं, किन्तु इस विलासिताका अन्तिम परिणाम भयङ्कर सर्पके दंशके समान घातक सिद्ध होगा। भोगका जीवन क्षणिक सुखदायी होता

है, किन्तु अन्तमें उससे नरकादिकी प्राप्ति होती है। तब वहाँ अनेक विपत्तियाँ तथा भयङ्कर वेदनाओंको सहन करना पड़ेगा।

संसारमें निर्धन होना अच्छा है, किन्तु चक्रवर्तीका विशाल साम्राज्य पाकर भी यदि धर्मरहित जीवन व्यतीत करना पड़े तो सर्वथा हेय है। लोग कहते हैं कि संसारमें वैधव्यका जीवन व्यतीत करना सबसे कठोर दण्ड है। किन्तु पूछा जाए, तो वैधव्य उतना दुःखदायी नहीं है, जितना लोग समझते हैं। इसका कारण यह है कि सन्मार्ग पर जानेवाले पतिकी यदि मृत्यु हो जाए, तो उस दशामें स्त्रीका वैधव्य-जीवन अवश्य ही शोकप्रद है, किन्तु यदि पतिका जीवन कुमार्गमें व्यतीत होता हो तथा कदाचित् मर भी जाए, तो उस स्त्रीका वैधव्य-जीवन हर प्रकारसे हेय कैसे हो सकता है? हाय! भयङ्कर-से-भयङ्कर कष्ट सहन करना उत्तम है, संसारमें सन्तान रहित होकर बाँझके नामसे सम्बोधित होना श्रेष्ठ है, जलती ज्वालामें विदग्ध होकर भस्मीभूत हो जाना श्रेयकर है, विषका पान कर प्राणत्याग भी हितकर है, भयङ्कर विषैले सर्पके दंशघातसे मृत्यु वरण कर लेना श्लाघनीय है, परन्तु जिनधर्म रहित जीवन क्षणमात्र भी कदापि व्यतीत नहीं करना चाहिए। जिनधर्मसे रहित जीवन-यापनकी अपेक्षा तो पहाड़की ऊँची चोटीसे कूद कर अथवा लहराते हुए समुद्रके गर्भमें डूब कर अथवा खड्गके भीषण आघातसे मृत्यु हो जाना श्रेयस्कर समझती हूँ। मुझे जिनधर्मसे रहित जीवन कदापि स्वीकार नहीं। यद्यपि स्त्रीके लिए पतिका पद देवतुल्य माना जाता है, फिर भी वह कितना भी गुणज्ञ हो, यदि जिनधर्ममें न हो, तो उसके साथ रहनेमें स्त्रीको पापका भागी बनना पड़ता है। हाय, हाय! मैंने पूर्व जन्ममें कौनसा पाप किया था, जिसके कारण इस जन्ममें मुझे जिनधर्म रहित जीवन व्यतीत करना पड़ रहा है। हे भगवन्! यहाँ आकर मैंने अपना लोक-परलोक दोनों नष्ट कर लिया। परम हितकारी जिनधर्मसे मेरा सम्बन्ध विच्छेद हो गया है। हे प्रभो! यह मुझे किस जन्मके पापका दण्ड दिया है? हे अभयकुमार! तुमने वास्तवमें मुझ समान भोलीभाली नारीके साथ घोर विश्वासघात किया है। हाय! मेरा शेष जीवन नारकीय बना दिया है।

स्वर्गलोकतुल्य जन्मभूमिसे लाकर मुझे कहाँ इस नरक कुंडमें ला पटका है? क्या तुम्हारे लिए इस प्रकारका निंदनीय कार्य करना उचित था? ग्रंथोंमें स्त्रियोंको 'अबला' कहा गया है। आज मेरे सामने उस कथनकी सत्यता स्वयंसिद्ध हो गयी। हे भगवन्! यथार्थमें हम स्त्रियाँ अबला ही हैं, जो दूसरे लोगोंकी दिखलाई मृग-मरीचिकासे सहजमें ही भटक जाती हैं एवं अन्तमें ठोकर खाकर पछताती हैं। लेकिन 'अब पछताए होत क्या, जब चिड़िया चुग गयी खेत' वाली लोकोक्ति मेरे साथ लागू होती है। मैं समझ नहीं पाती हूँ कि जो व्यक्ति अपने कपटपूर्ण आचरणसे किसी निर्दोषको अपने चंगुलमें फँसा लेते हैं, उनका यह भवसागरसे कैसे उद्धार हो सकेगा? किसी अनजान व्यक्तिको पथभ्रष्ट करनेवालेकी गणना महापापीके रूपमें ही होगी।'

इस प्रकार अपने पिता राजा चेटकके वहाँ धर्ममय वातावरणके स्थान पर अपने पति राजा-श्रेणिकके यहाँ धर्मरहित राजगृही नगरीको देख सोच-विचारमें निमग्न होकर चेलना शोकसागरमें डूबने लगी। उसके हृदयका धैर्यरूपी बाँध भग्न हो गया। उसके अन्तस्तलमें असीम वेदनाकी अनुभूति होने लगी। फलस्वरूप उसे करुण क्रन्दन प्रारम्भ हो गया। महारानी चेलनाकी ऐसी शोचनीय अवस्था देखकर उसकी समस्त सखियाँ एकदम भयभीत हो गई। उसकी समझमें यह रहस्य नहीं आया कि महारानीने क्यों एकाएक मौन धारण कर लिया है? वस्तुतः महारानी चेलनाने सबसे सम्भाषण त्याग करके जिनेन्द्र भगवानके नामका स्मरण करना प्रारंभ कर अपने शोकको शान्त करनेका उद्यम किया था। किन्तु इस प्रयासमें अनायास ही माता-पिताकी स्नेहमयी स्मृति उसके मानस-पटल पर अङ्कित हो आयी व रुदन हो गया।

जब महाराज श्रेणिकने चेलनाके शोकमग्न होनेके समाचार सुने, तब उनका धीरज समाप्त हो गया। वे यथाशीघ्र रानी चेलनाके महलमें आए। उसकी ऐसी शोकपूर्ण अवस्था देखकर महाराजाने मधुर स्वरमें जिज्ञासा व्यक्त की—'प्रियतमे! तुम्हारी ऐसी शोकपूर्ण दशा देखकर मेरे हृदयमें अपार चिन्ता हो रही है। मैं जानता हूँ कि आज तक तुम्हारे मुखमण्डल पर कभी उदासीका चिह्न तक नहीं

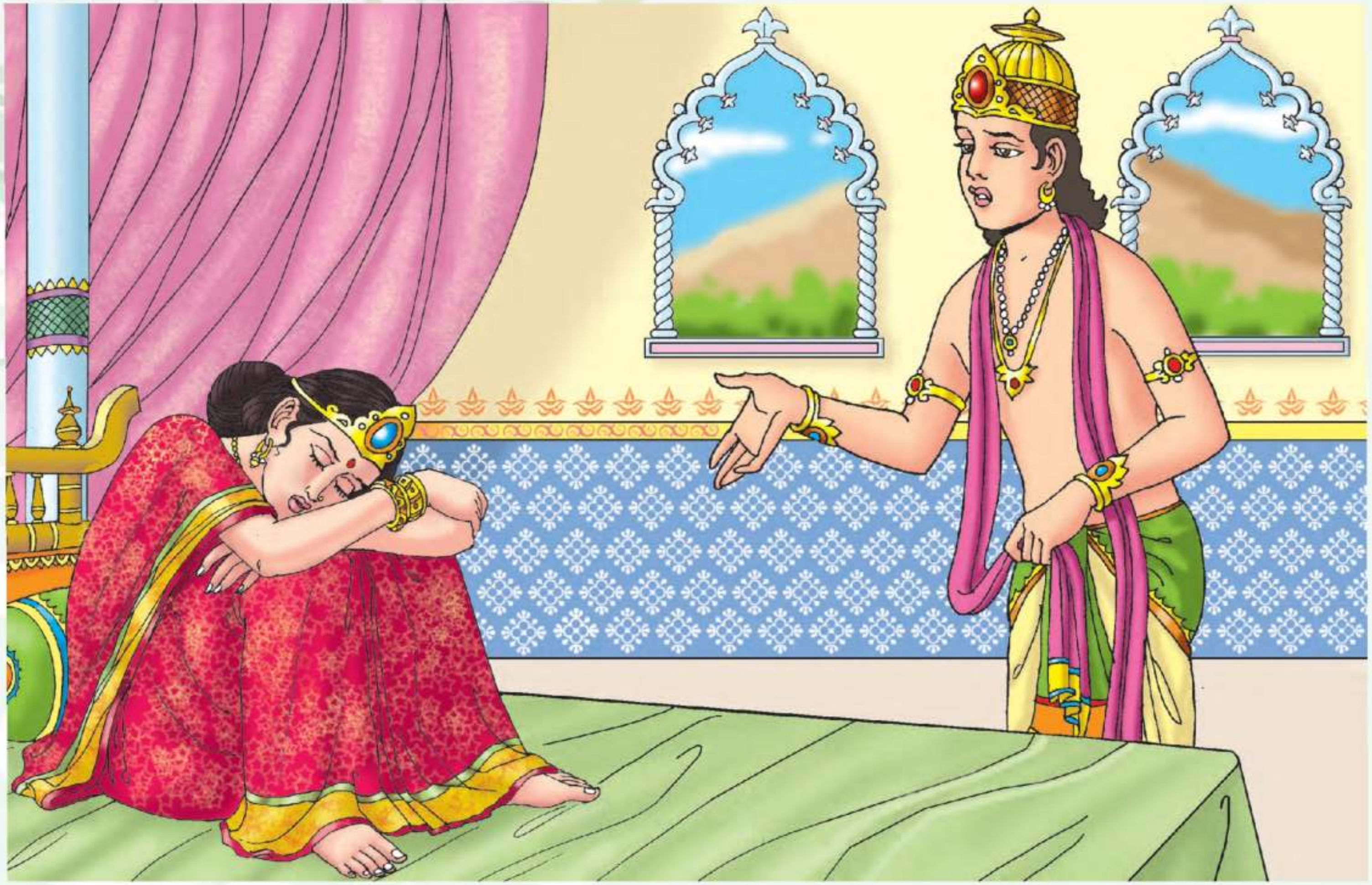

अपने पतिके राज्यमें जिनधर्म एवं जिनमंदिरोंका अभाव होनेसे रानी चेलना अत्यंत उदास रहती है।
राजा श्रेणिक चेलनाको समझाकर अपना धर्म पालन करनेकी तथा जिनमंदिर बनानेकी सहमति देते हैं।

देखा था, किन्तु अब तुम्हें क्या हो गया है? प्रिये! तुमने सामान्य शिष्टाचार पालन तक विस्मृत कर दिया है। मेरे आगमन पर तुम सदा प्रसन्न चित्तसे मेरा स्वागत–सत्कार करतीं थीं। आज मैं उल्टी गङ्गा बहती देख रहा हूँ। प्रिये! अब विलम्ब न करो—शीघ्र बताओ। किसीने तुम्हारी अवज्ञा अथवा उपेक्षा तो नहीं की? असावधानीवश कोई अपराध तो नहीं हो गया? मैंने आज तक तुम्हारी इच्छाके विरुद्ध कोई कार्य नहीं किया है। यदि अनजानमें मुझसे तुम्हारा उपहास हो गया हो, तो प्राणप्रिये! उसे विस्मृत कर क्षमादान दो। तुम मौन क्यों हो? यदि इस राजमहलके किसी सदस्यने तुम्हारा अपमान किया हो, तो तत्काल इङ्गित मात्र कर दो कि उसे क्या दण्ड दूँ? तुम्हारी ऐसी मलिन अवस्था देखकर मैं अत्यन्त चिन्तित हूँ। आज तुम्हारी ऐसी अवस्था देखकर मैं व्याकुल हो रहा हूँ। यह विशाल राज्य-वैभव मुझे निष्फल लग रहा हैं। हे चन्द्रमुखी! मैं प्रार्थना करता हूँ कि तुम अपने हृदयके शोक-सन्तापको त्यागकर मेरी उद्विग्नता मिटाओ। हे महादेवी! अपनी प्रसन्नताका वरदान प्रदान कर इस याचकको सन्तुष्ट करो।'

व्याकुल वाणी सह बारम्बार महाराजका आग्रह सुनकर चेलनाने कहा—प्राणनाथ! मेरे शोकग्रस्त होनेमें न तो आप दोषी हैं, न ही आपके राजप्रसादका अन्य कोई सदस्य। सच पूछीए तो मेरे सन्तापका एकमात्र कारण 'जिनधर्मसे मेरा सम्बन्ध विच्छेद हो जाना है'। जबसे मैं इस विशाल राजमहलमें आयी हूँ, तबसे ही यहाँ सत्यधर्मसे विपरीत दशा देखकर क्षुब्ध हूँ। मैंने तो सुना था कि 'आप जिनधर्ममें दृढ़ आस्थावान हैं'। आपकी नगरीमें निर्ग्रंथ मुनियोंकी नवधा भक्तिसे सदा सेवा होती है। किन्तु यहाँके समस्त लोग अन्यधर्मके प्रभावमें आकर अहितकारी मिथ्यामार्गके पथिक बने हुए हैं। यह देख मेरी आत्मा काँप उठी है। हे महाराज! अन्य-धर्मके प्रति मेरे चित्तमें अनादर तो नहीं है, परन्तु उससे जीवनमें सुख-शांति नहीं मिलती तथा भवसागरसे उद्धार नहीं होता।'

चेलनाके वचन सुनकर महाराज श्रेणिकने अपने गुरु-गम्भीर स्वरमें कहा—'प्राणवल्लभे! मैं तुम्हारे मुखसे क्या सुन रहा हूँ? भला मेरे महलमें अधर्मकार्य होना सम्भव है? यहाँ दिन-रात्रि सद्धर्मका पालन होता है। बौद्ध-

धर्मके समान संसारमें कोई सच्चा धर्म नहीं है। इसीके द्वारा मनुष्यको जीवनमें सुख-शान्ति एवं सन्तोषकी प्राप्ति हो सकती है। मैं उसी भगवान बुद्धका सच्चा अनुयायी हूँ, जो संसारके समस्त ज्ञानके एकमात्र दृष्टा हैं। संसारमें भला उनसे बढ़कर अन्य कौन उपासनाके योग्य उत्तम देव हैं, जिनकी पूजा-स्तुति की जाए? संसारके जितने सर्वश्रेष्ठ उत्तम पुरुष हैं, उन्हें चाहिए कि वे भगवान बुद्धके पवित्र संघमें शरणागत होकर अपनी आत्माका कल्याण करें। भगवान बुद्धकी कृपासे संसारी जीव सुख, सम्पदा तथा स्वर्ग मोक्षका अधिकारी बन सकता है। अतः हे सुमुखि! बुद्धकी शरणमें जानेसे ही हम लोगोंका यथार्थ कल्याण सम्भव है।'

बौद्धधर्मके सम्बन्धमें महाराजके इस प्रकार प्रशंसात्मक वचन सुनकर चेलनाने उत्तर दिया—'पृथ्वीनाथ! आपने बौद्ध-धर्मके सम्बन्धमें जितने भी तर्क दिये हैं, वे युक्तियुक्त नहीं हैं। मैं आपको विश्वास दिलाती हूँ कि इस संसारमें तो क्या त्रिभुवनमें, जिनधर्मके समान समस्त जीवों पर दया रखनेका पवित्र उपदेश देनेवाला कोई अन्य महान सार्वभौमिक धर्म नहीं है। जिनधर्मका सिद्धान्त प्राणीमात्रकी रक्षा करनेका है। जिनेन्द्र भगवानने अपने केवलज्ञानसे जानकर उपदेश द्वारा इसे प्रकट किया है। हे महाराज! संसारमें जितने भव्यजीव हैं, वे सब जिन-धर्मकी आराधना कर उत्तमोत्तम गति प्राप्त करते हैं। जिनधर्मके सच्चे अनुयायी क्षुधा-पिपासा आदि संसारके कष्टोंसे रहित होकर अठारह प्रकारके दोषोंसे मुक्त होकर त्रिभुवनमें सर्वश्रेष्ठ ज्ञान (केवलज्ञान) प्राप्त करते हैं। तब वे भव्य जीवोंके पुण्योदयसे मुक्तिपथके मार्गको दिव्यध्वनिसे उपदिष्ट करनेसे 'आप्त' कहे जाते हैं। जैन शास्त्रोंमें प्रमाण परीक्षित जीव, अजीव, आस्रव आदि सात तत्त्वोंका उपदेश है। केवली भगवानकी दिव्य वाणीके रूपमें प्रमाण, नय, निक्षेप आदि सात प्रकारके ज्ञानरूपी रत्नोंका वर्णन उद्भासित होता है। सातों तत्त्वोंमें कथञ्चित नित्यत्व एवं अनित्यत्व नामक धर्मके अङ्ग हैं। यदि इन्हें सर्वथा नित्य एवं अनित्य समझ लिया जाए, तो सम्यक् प्रकारसे इनके रूपका ज्ञान नहीं हो सकता। हे धरणीपति! जो नग्नरूपमें दिगम्बर निर्ग्रंथ मुनि भगवंत हैं, उत्तम

श्रेणिक राजाके नगरमें चेलना रानीने जिनमंदिरका निर्माण कराके उसमें
अन्य रानीयोंके सथ भक्ति-पूजा आदि आराधना करतीं हैं।

क्षमादान तथा उत्तम मार्दव गुण धारण करनेवाले हैं, संसारके मिथ्या अन्धकारको मिटा देनेवाले हैं, राग-द्वेष-मत्सर-क्रोध-मोह पर विजय पाकर अजातशत्रु बनकर अन्तर एवं बाह्यसे पूर्ण तपस्वी हैं—वे ही जिनधर्ममें उत्तम साधु माने जाते हैं। हमारे जिनधर्मके सिद्धान्तमें प्राणीमात्रके उपर दयाभाव रखकर अहिंसा ही श्रेष्ठ धर्म माना गया है। हे जीवन सर्वस्व! मैंने आपके सामने संक्षेपसे जिनधर्मकी मूल बातें प्रगट की है, क्योंकि इनका विशद वर्णन केवली भगवानके अतिरिक्त भला अन्य कौन कर सकता है? हे कृपासिन्धु! क्या मैं आपसे सानुरोध जिज्ञासा कर सकती हूँ कि ऐसे परम हितकारी पवित्र धर्मका त्याग करना क्या मेरे लिए कदापि उचित है? जिनधर्मसे इर्ष्याभाव रखनेवाले बड़े भाग्यहीन होते हैं।'

रानी चेलनासे जिन–सिद्धान्तके तत्त्व-वचन सुनकर महाराजने कहा—'हे हृदयेश्वरी! मैं तुमसे अनुरोध करता हूँ कि जिस धर्ममें तुम्हारी श्रद्धा हो, उसीकी आराधना प्रसन्नताके साथ करो। अपने मनमें किसी प्रकारका शोक-सन्ताप न करो।' महाराजकी इस प्रकारकी धार्मिक सहिष्णुता देखकर चेलनाके आनन्दकी कोई सीमा न रही। उसने नियमानुसार प्रतिदिन जिनधर्म-शास्त्रोंका स्वाध्याय करना प्रारंभ कर दिया। वह जिनेन्द्र भगवानकी स्थापना-पूजा-भक्तिके साथ करने लगी। अष्टमी-चतुर्दशीके पर्व दिनोंमें उपवास रखकर रात्रि जागरण करने लगी। प्रतिदिन भगवानकी स्तुतिमें नृत्य-स्तुति आदि उसके कार्योंने समस्त अन्तःपुरकी रानियोंमें जिनधर्मके प्रति श्रद्धा, प्रेम तथा भक्तिका अनुकूल वातावरण उत्पन्न कर दिया। अल्पकालमें ही चेलनाके भक्तिभावसे समस्त राजप्रासादमें जिनधर्मका गहरा प्रभाव फैल गया।

राजा श्रेणिककी बौद्धधर्मके प्रतिकी दृढता, चेलनाकी धर्मके प्रति श्रद्धाके सामने क्रमशः तूटती गई व अंततः राजा श्रेणिकने प्रबल पुरुषार्थसे सम्यक्त्वरत्नको प्राप्त किया, भगवान महावीरके तीर्थके 100 इन्द्रोंमें नरेन्द्र बने व सम्यक्त्वरत्न सह 16कारण भावनाओं सह तीर्थंकरप्रकृति नामकर्मका बंध किया। तदन्तर वे जम्बूद्वीपके भरतक्षेत्रके आनेवाली चौवीसीके प्रथम तीर्थंकर बन, जीवोंको कल्याणका मार्ग बताकर मोक्षमें पधारेंगे।

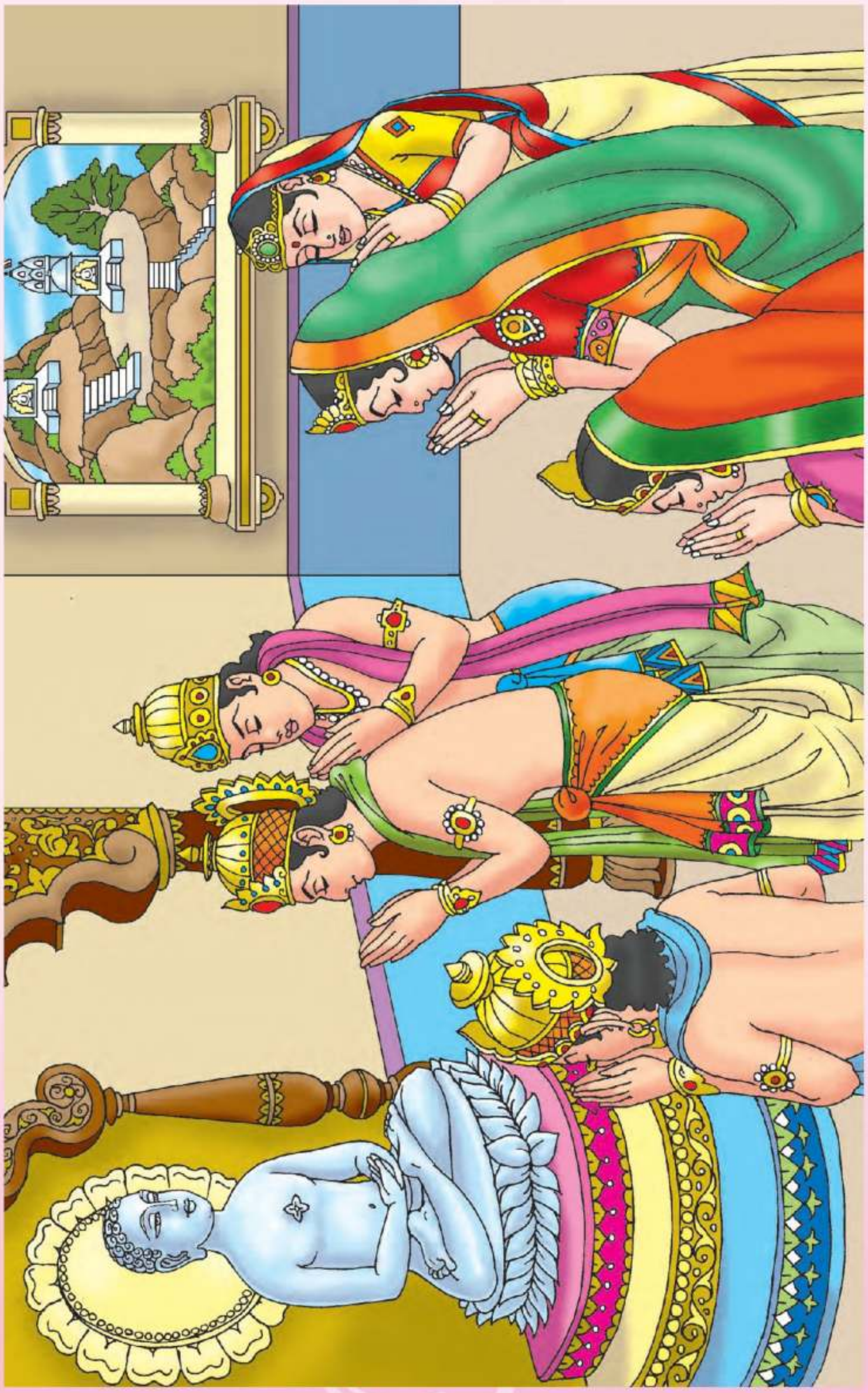

श्री हनुमानजी अपने परिवारजनोंके साथ मेरु पर्वतके अकृत्रिम जिनालयोंकी वंदना करते हैं।

धन्य है ज्ञानीयोंका वैराग्य

एक समय हनुमान (श्री शैल) अनंगकुसुमादि समस्त रानियों सहित अकृत्रिम चैत्यालयोंकी वन्दना करने गये। वन्दना करके सुमेरुकी प्रदक्षिणा करके भरत-क्षेत्रकी ओर लौटे। सूर्यास्त होने पर सुरदुन्दुभी नामक पर्वत पर डेरा किया। रात्रिमें आकाशसे अचानक एक तारा टूटा। उसे देख हनुमान मनमें विचारने लगे कि हाय! इस संसारमें देव भी कालके वशमें हैं। संसारमें ऐसा कोई नहीं है जो कालसे बचे। यह मोहका प्रभाव है कि जीव अनन्तकाल तक दुःख भोगता हुआ चतुर्गतिमें भ्रमण करता फिरता है। रागादिकके वश हो वीतराग भावको नहीं जानता। इस प्रकार हनुमानने मोह पटलसे रहित होकर दृढ़ निश्चय किया कि जिस मार्गसे जिनवर सिद्ध-पदको पधारे मैं भी उसी मार्ग पर चलूँगा।

रात्रि व्यतीत हुई। संसारके भोगोंसे विरक्त हनुमान मन्त्रियोंसे कहने लगे कि पूर्वकालमें जिस प्रकार भरत चक्रवर्ती तपोवन गये थे। उसी प्रकार मैं भी शीघ्र तपोवनको जाऊंगा। ऐसा कहकर शीघ्र ही हनुमान सपरिवार मन्त्रियों सहित अपने नगरमें आए। हनुमानको संसारसे विरक्त देख मन्त्रियोंने अत्यन्त विनयपूर्वक कहा कि हे नाथ! हम तुम्हारे भक्त हैं हमें अनाथ न करो। हनुमानने कहा कि यद्यपि तुम मेरे आज्ञाकारी हो तथापि अनर्थके कारण हो मेरे हितके कारण नहीं हो। भला, जो संसार समुद्रको पार करना चाहे उसे तुम पुनः समुद्रमें डुबाओ तो कैसे हितु? निश्चयसे तो उसे शत्रु ही समझना चाहिए। इस संसारमें प्राणी मोहके प्रभावसे जन्म,

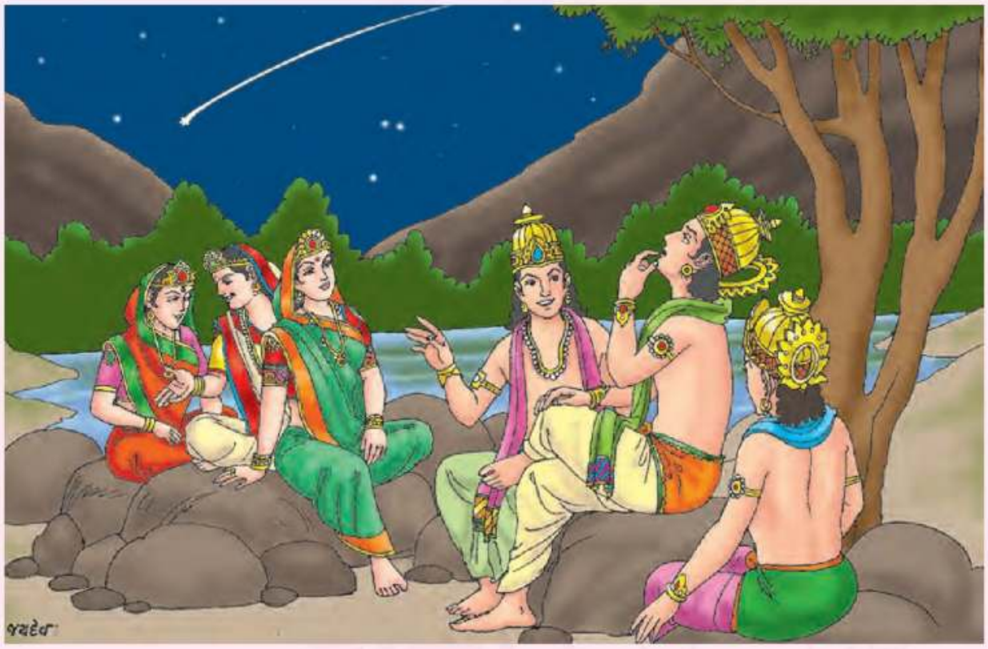

मार्गमें रात्रिनिवासके दरम्यान अपने परिवारजनोंके साथ वार्ता-विनोद करते हुए आकाशमेंसे तारा खिरता देख हनुमानजीको वैराग्य उत्पन्न होता है।

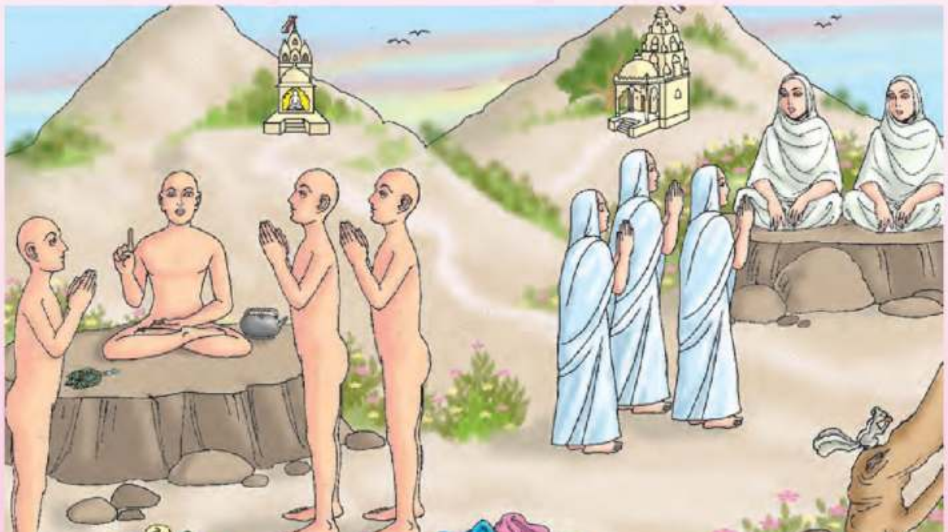

संसारके भोगोंसे विरक्त हनुमानजी मुनिदीक्षा अंगीकार करते हैं तथा उनकी रानियाँ भी आर्यिका धर्म अंगीकार करती हैं।

जरा मरणके महादुःख भोगता हुआ चतुर्गतिमें भ्रमण करता हुआ अत्यन्त भयानक दुःख उठाता है। मैं उसे उल्लंघ कर जन्म-जरा-मृत्यु रहित पदको पाना चाहता हूँ।

हनुमानकी रानियाँ अत्यन्त खेद खिन्न होकर रुदन कर उनके चरणों पर गिरीं। हनुमानने उन्हें संसारका स्वरूप बताकर धैर्य बंधाया फिर बड़े पुत्र को राज्य दे तथा अन्य सबको यथोचित विभूति सौंप कर महलसे बाहर निकले। नगरके निकट चैत्यवनमें जाकर विराजमान चारण मुनियोंको नमस्कार करके उनसे परम कल्याणकारी जिन-दीक्षा धारण की। उनके साथ विद्युतगति आदि साढ़े सात सौ राजा शुद्ध चित्त योगीन्द्र हुए। हनुमान तथा विद्युतगति आदि समस्त राजाओंकी रानियाँ भी संसारसे उदास हो बन्धुमती आर्यिकाके निकट आर्यिका हुई। महामुनि हनुमान वन तथा पर्वतोंकी शिखर पर तेरह प्रकारके चारित्रको पाल अत्यन्त दुर्द्धर तप कर तुङ्गीगिरके शिखरसे निर्वाण पधारे।

❀

चारित्रमोहकी आश्चर्यता

श्रीराम-लक्ष्मण परस्पर स्नेहपूर्वक सुखसे राज्य करते थे। कभी राग क्रीड़ा कभी जल क्रीड़ा तथा कभी वन क्रीड़ा कर सबका मन मोहित करते थे। पूर्व पुण्यके प्रभावसे इन्द्रके सदृश सुख भोगते थे। गृहस्थाश्रमका विधिपूर्वक पालन तथा साधु-तपस्वियोंकी भक्ति करते थे। न्यायानुकूल राज्य कर प्रजाका पुत्रके समान पालन करते थे। जब श्रीरामचन्द्रने हनुमानका मुनि होना सुना तथा लक्ष्मणके आठों पुत्रोंके जिन-दीक्षाका धारण करनेका ख्याल आया तब किंचित् चिन्तित होकर कहने लगे कि अहो! इन्होंने मनुष्य जन्मके क्या सुख भोगे! ऐसी अल्प वयमें भोगोंको छोड़कर योग धारण किया बड़ा आश्चर्य है! यद्यपि श्रीराम सम्यग्दृष्टि तथा चरमशरीरी थे तथापि मोहके प्राबल्यसे साधारण मनुष्योंके सदृश संसारके सुख भोगोंमें तल्लीन थे, उसका उन्हें खेद था।

एक समय स्वर्गलोकमें सौधर्म इन्द्र अनेक देवोंके मध्य सभामें धर्मका व्याख्यान कर रहे थे कि अहो देवगण! तुम अपने भावरूप पुण्य सदैव भक्ति-युक्त श्री अरिहंत देवको चढ़ाओ। अर्हन्त भगवान समस्त दोष-रूपी महावनको भस्म करनेके लिए दावानल समान हैं। उनकी समस्त इन्द्र, धरणेन्द्र चक्रवर्ती इत्यादि भक्तिपूर्वक सदैव स्तुति करते हैं। संसारमें मनुष्य जन्म अत्यन्त दुर्लभ है। जो मनुष्य जन्म पाकर वीतराग सर्वज्ञको भूले हुए हैं उनके मनुष्य-जन्मको धिक्कार है। ऐसा दिन कब हो जब मैं मनुष्य-जन्म पाकर विषयरूपी बैरियोंको जीत अविनाशी पदको प्राप्त करूं।

इन्द्रका व्याख्यान श्रवण कर एक देव बोला हे देवेन्द्र! यहां स्वर्गमें

तो अपनी यह बुद्धि रहती है, परन्तु मानव शरीर पाने पर सब भूल जाते हैं। देखो, पंचम स्वर्गके ब्रह्मेन्द्र नामक इन्द्र जो मनुष्य-जन्ममें रामचन्द्र हुए हैं उन्हें वैराग्यका विचार ही नहीं है जब स्वर्गमें इन्द्र अवस्थामें थे तब उनकी भी अपने जैसी ही बुद्धि थी। उनको लक्ष्मणसे अत्यन्त अनुराग है। वे लक्ष्मणको क्षणभर भी देखे बिना विकल हो जाते हैं। लक्ष्मणको निमिष मात्रको भी नहीं छोड़ सकते। इन्द्रने कहा कि कर्मोंकी ऐसी ही विचित्रता है। बड़े-बड़े बुद्धिमान भी इनकी प्रेरणासे मूर्ख हो जाते हैं। अहो देवों! जिस रामने अपने सम्पूर्ण भव अपने कानों से सुने, केवलीके मुखसे अपना चरम-शरीरी होना सुना वे राम कर्मोंकी प्रेरणासे आत्म-हित करनेसे कितने दूर हैं? सांसारिक विषय भोगोंमें तल्लीन हो रहे हैं। जीवोंको स्नेहका प्रबल बन्धन है।

रत्नचूल तथा मृगचूल नामक देवोंने बलभद्र-नारायण (श्रीराम-लक्ष्मण)के परस्पर स्नेहकी परीक्षा करनेके हेतु परस्पर विचार किया कि रामका लक्ष्मण पर इतना स्नेह है कि लक्ष्मणके देखे बिना क्षण मात्र नहीं रह सकते। देखें; रामका मरण सुन लक्ष्मणकी क्या चेष्टा होती है? ऐसी कुत्सित धारणा कर कौतुहल-प्रिय दोनों देव अयोध्या आए और श्रीरामके महलमें विक्रिया कर अन्तःपुरमें समस्त रानियोंका करुणाजनक रुदनका शब्द कराया, जिसे सुन समस्त मंत्री, उमराव, पुरोहित तथा द्वारपाल नीचा मुख करके लक्ष्मणके पास आए और उन्हें श्रीरामके मरणका समाचार सुनाया कि हे नाथ! श्रीराम परलोकको सिधारे। इतना सुनते ही लक्ष्मणने 'हाय्' शब्द भी आधा-सा बोलते हुए तत्काल प्राण छोड़ दिए और अचेतन शरीर मात्र रह गया। लक्ष्मणको भ्राताकी मिथ्या मृत्युके वचनसे चैतन्य रहित देख दोनों देव अत्यन्त व्याकुल हुए। तथा परस्पर कहने लगे कि इनकी मृत्यु ही इस भांति थी। ऐसा कह अत्यन्त पश्चाताप करते हुए अपने

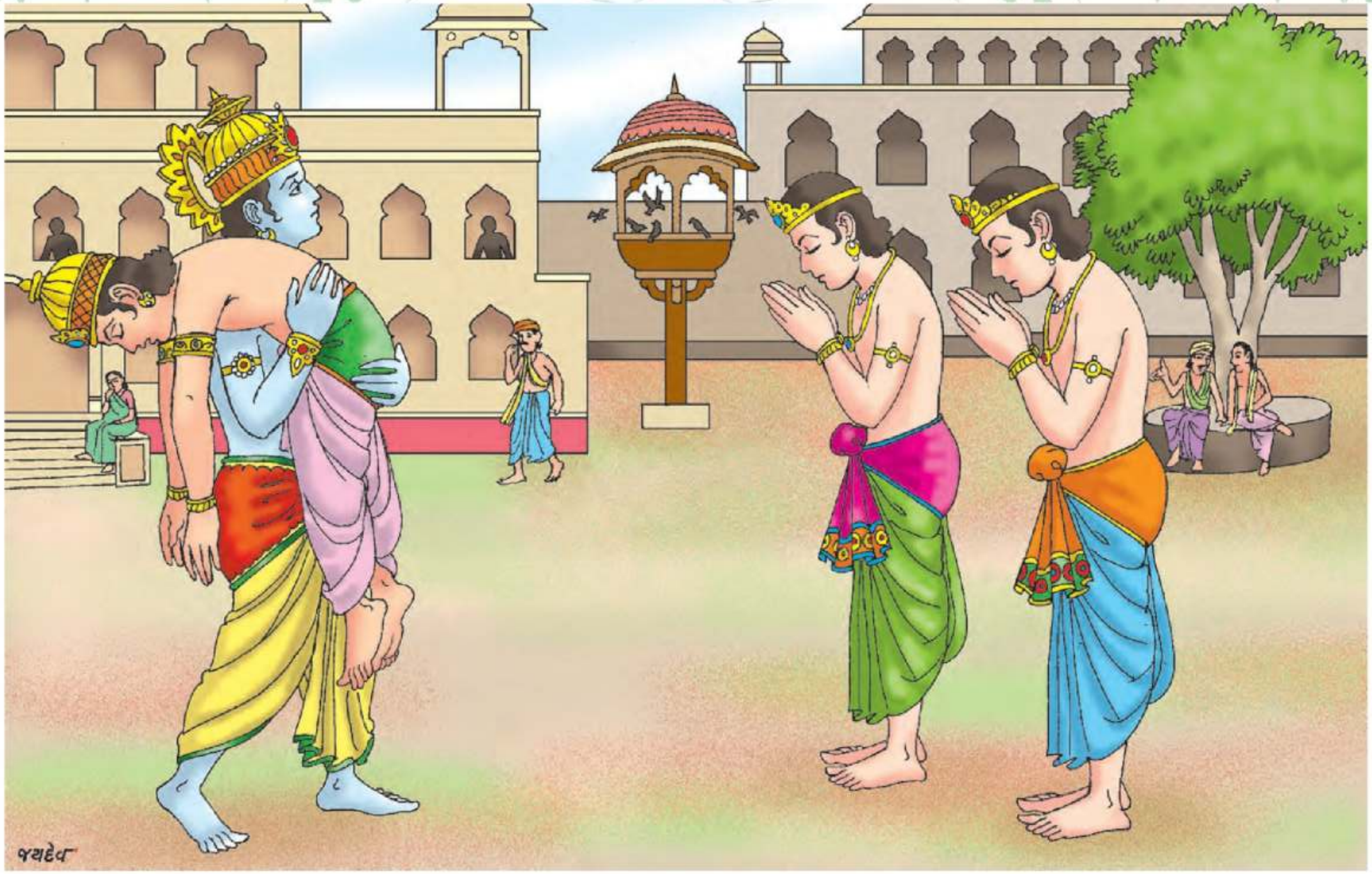

लक्ष्मणजीके अचानक मृत्युसे रामचन्द्रजी गहरे शोकमें डूब जाते हैं और उनके मृत शरीरको कंधे पर रखकर घुमते हैं। उनकी ऐसी दशा देखकर उनके पुत्र लवण और अंकुशको वैराग्य उत्पन्न होता है।

स्थानको चले गए। लक्ष्मणके प्राण रहित मनोहर देहको देव भी अधिक देर तक न देख सके।

लक्ष्मणकी समस्त स्त्रियां उन्हें अचेतनसा देख नाना प्रकारसे उन्हें समझाने लगीं। उसके अंगसे आलिंगन कर कहने लगी कि हे देव! उठो तथा हम पर प्रसन्न होओ। वीणा, बांसुरी, मृदंगादि नाना प्रकारों के वादित्रोंके मनोहर शब्दसे मानो लक्ष्मणको रीझाने लगीं। परन्तु उनके सब प्रयत्न व्यर्थ हुए। रानियाँ संशययुक्त हो रुदन करने लगीं कि हाय! क्षण मात्रमें यह क्या हुआ? लक्ष्मणके अचेतका वृतान्त सुनकर श्रीरामचन्द्रजी भ्रमयुक्त तत्काल मंत्रियों सहित लक्ष्मणके महलमें आए। भाईको तत्काल उखड़े हुए वृक्षके समान पृथ्वीपर पड़े देख कहने लगे कि आज लक्ष्मण अकारण मुझसे क्यों रूठ गया है। यह सदैव आनन्दित तथा प्रसन्न रहनेवाला आज विषादयुक्त क्यों है? इस प्रकार अनेकों विकल्प करते हुए श्रीरामने लक्ष्मणको उठाकर छातीसे लगा लिया। यद्यपि लक्ष्मणके निर्जीव होनेके समस्त लक्षण दिखाई देते थे तथापि तीव्रमोहके कारण श्रीराम उन्हें मृतक नहीं मानते थे। वक्रग्रीवा, श्वासोच्छ्वास रहित, स्थिर नेत्र देख श्रीराम अत्यन्त खेद-खिन्न हो मूर्छित हो गए फिर सचेत हो विलाप करने लगे। लक्ष्मणका इस प्रकार मरण देख लव तथा अंकुश मनमें विचारने लगे कि धिक्कार है इस असार संसारको। इस शरीरके समान क्षणभंगुर और कौन है? जो निमिषमात्रमें मृत्युको प्राप्त होता है। विद्याधरोंसे भी अजेय वासुदेव लक्ष्मण वह भी कालके गर्तमें समाए। हमें भी इस विनश्वर शरीर तथा अस्थिर राज्य-वैभवमें फंसे रहनेसे कौन-सी सिद्धि? इस प्रकार दोनों भाई संसारके भोगोंसे विरक्त हो पिता श्रीरामके चरणोंको नमस्कार कर महेन्द्रोदय उद्यानमें अमृतेश्वर मुनिकी शरणमें जा निर्ग्रन्थ मुनि हो गये।

दोनों भाई लव तथा अंकुशके दीक्षा लेने पर नगर-निवासी अत्यन्त

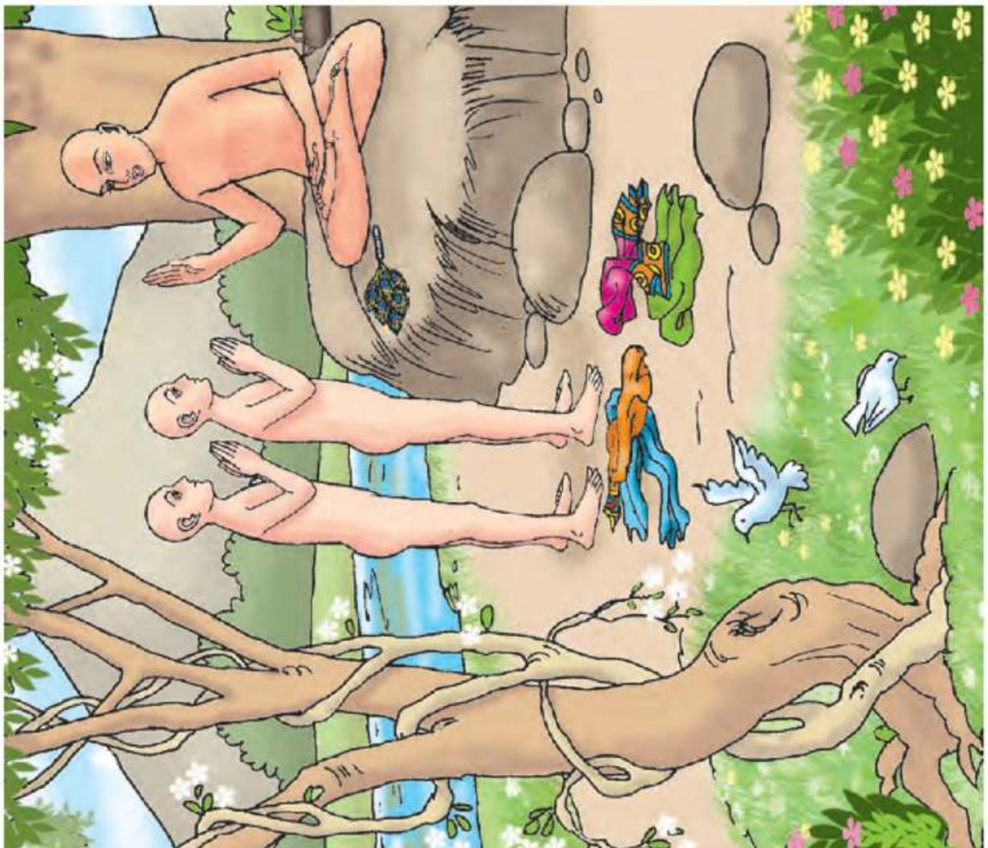

वैरागी कुमार लवण एवं अंकुश वनमें जाकर अमृतेश्वर मुनिराजके पास जिनदीक्षा अंगीकार करके आत्मसाधना करते हैं।

व्याकुल हो कहने लगे कि अब हमारा रक्षक कौन है? पुरुषोत्तम श्रीराम, भाईके मरणके शोकरूप भंवरमें पड़े हैं। उन्हें अपने पुत्रोंके वन जानेकी भी सुधि नहीं है। उन्हें लक्ष्मण राज्य, पुत्रों तथा समस्त रानियोंसे भी अधिक प्रिय थे। कर्मोंकी यह बड़ी विचित्रता है, संसारका ऐसा चरित्र देख ज्ञानी जीव उससे उदास हो वैराग्यको प्राप्त होते हैं। नारायण (लक्ष्मण)के मरणसे समस्त लोग अत्यन्त व्याकुल हुए। विशल्यादि समस्त रानियां करुणाजनक विलाप करने लगीं। युगप्रधान श्रीरामचन्द्रजी तीव्रमोहके वश लक्ष्मणके मृतक शरीरको कभी हृदयसे लगाते, कभी चूमते, कभी वस्त्राभूषण पहिनाते, कभी लेकर बैठ जाते, कभी भोजनका ग्रास मुखमें देनेकी चेष्टा करते तथा उनके शरीर पर सुगन्धित द्रव्योंका लेप करते थे। वे लक्ष्मणको क्षण-मात्र भी नहीं छोड़ते थे। कांधे पर रख इधर-उधर फिरते थे। इस प्रकार श्रीरामचन्द्र विह्वलोंकी सी चेष्टा करते और भाईको अत्यन्त मीठे शब्दोंसे सम्बोधित कर उन्हें प्रसन्न करनेकी चेष्टा करते थे। लोगोंने उन्हें अनेक प्रकार समझाया, परन्तु श्रीराम किसीकी बात नहीं मानते थे। यदि कोई कहता कि अब लक्ष्मण मरणको प्राप्त हुए तब श्रीराम उससे कहते थे कि 'तेरा भाई मर गया होगा अथवा तेरा कोई हितू मर गया होगा'।

लक्ष्मणके मरणका वृत्तान्त सुन विभीषण अपने पुत्रों सहित, विराधित, सुग्रीवादि समस्त परिवार सहित अयोध्या आए। तथा श्रीरामको नमस्कार कर उनके समीप पृथ्वी पर बैठे। विभीषणने अनेक प्रकारसे श्रीरामको समझाया और कहा कि भाईके मरणका शोक दुर्निवार है परन्तु ज्ञानी जन इतना शोक नहीं करते। यह मनुष्य शरीर तो पानीके बुलबुलेके समान क्षणभंगुर है जिसने जन्म लिया वह अवश्य मरता है। हे प्रभो! यह लक्ष्मणका मृतक शरीर त्यागिये। परन्तु प्रबल मोहके योगसे श्रीरामचंद्रजीने लक्ष्मणका मृतक शरीर कलेवर नहीं त्यागा। सुग्रीवादि समस्त राजाओंने विनती की कि हे पुरुषोत्तम! अब वासुदेवकी दग्ध क्रिया करो। श्रीरामचंद्रजीको यह वचन

अत्यन्त अनिष्ट प्रतीत हुआ। वे क्रोधपूर्वक बोले कि 'तुम अपने भाई माता, पिता, पुत्र, पौत्र सबकी दग्ध क्रिया करो'। 'मेरे भाईकी दग्धक्रिया क्यों हो'? 'मेरा भाई क्यों मरे? उठो! लक्ष्मण!! उठो!!! इन दुष्टोंके संयोगसे पृथक् होकर किसी अन्य स्थानको चलें'। यह कहकर भाईको कांधे पर रख वनको चले। समस्त राजा उनके पीछे-पीछे चलने लगे।

धीरे-धीरे लक्ष्मणके मरने, उनके शोकमें श्रीरामके विह्वल होने तथा लव-अंकुशके मुनि होनेके समाचार सर्वत्र फैल गये जिससे शत्रुओंका उत्साह बढ़ा। शम्बूकका (जिसे लक्ष्मणने मारा था) भाई सुन्दर इन्द्रजीतके पुत्र वज्रमालीके पास आया और उससे कहा कि मेरा रघुवंशियोंसे बैर है। लक्ष्मणने मेरे बाबा और दादा दोनोंको मार पाताललंकाका राज्य ले विराधितको दे दिया है। सुग्रीव जो रामसे जा मिला है उसने समस्त राक्षसवंशीयद्वीपको उजाड़ दिया है। लक्ष्मणके हाथ चक्र आया था। जिससे राक्षसोंके अधिपति रावणवंशका वध हुआ था। अब काल चक्रसे लक्ष्मण मारा गया है। वानरवंशी जो लक्ष्मणकी भुजाओंसे मदोन्मत्त हो रहे थे उनके पक्ष टूट गये है। अब वे सर्वथा असहाय और निर्बल हैं। ग्यारह पक्ष पूर्ण हो चूके यह बारहवां पक्ष लगा है। राम अपने मृतक भाई लक्ष्मणको कांधे पर रक्खे पागलसा फिर रहा है। वह भाईके शोकरूपी दल-दलमें ऐसा फंसा है कि उसमें से निकलनेकी उसकी सामर्थ्य नहीं है अतएव रामसे बदला लेनेका यह उत्तम अवसर है।

शम्बूकके भाई सुन्दरके वचन कि अयोध्या शोकमग्न है, राम-लक्ष्मणसे वैर लेनेका सुन्दर मौका है। यह सुन इन्द्रजीतका पुत्र क्रोधसे प्रज्वलित हो सेना एकत्र कर अयोध्या को चला। शत्रु-दल समीप आया देख श्रीरामचन्द्र भाईको कंधे पर रख एक हाथसे धनुष बाण ले विद्याधरोंसे युद्ध करने निकले। इसी समय कृतान्तवक्र सेनापति तथा जटायुके जीव

का जो चौथे स्वर्गमें देव हुए थे–उनका आसन कम्पायमान हुआ। दोनोंने अवधिज्ञानसे श्रीरामचंद्रजीको संकटापन्न स्थितिमें देख कृतान्तवक्रके जीवने कहा कि 'हे मित्र! मैंने जिन-दीक्षा धारण करते समय श्रीरामचंद्रजीको संबोधनेका वचन दिया था, तुम भी जटायु की पर्यायमें उनके कृपापात्र रहे हो। अतएव शीघ्र अयोध्या चलो'।

तुम शत्रुओंकी सेनामें प्रवेश कर योद्धाओंकी बुद्धिका हरण करो और मैं श्रीरामचंद्रजीके समीप जाता हूँ। जटायुके जीवने शत्रु-सेनामें ऐसी विक्रिया की कि जिससे शत्रु-पक्षको अयोध्या पर विजय पाना असम्भव प्रतीत होने लगा तथा समस्त सेना भागनेको उद्यत हुई परन्तु उस मायाकी प्रेरणासे भागनेको उन्हें कोई मार्ग भी न सूझ पड़ा। थोड़ी देरमें उन्हें देवने अपनी विक्रियासे दक्षिणकी ओर एक मार्ग दिखाया। उसे देख शत्रु-दल अत्यन्त भयभीत होकर भागा। वज्रमाली तथा सुन्दरके पुत्रोंने मनमें विचारा कि अब हम किसीको अपना मुंह कैसे दिखावेंगे? ऐसे जीवनसे तो मरण ही भला। तदन्तर रतिवेग नामक मुनिका संयोग पाकर उसके समीप निर्ग्रन्थ साधु हुए। मानसिकभावोंकी विचित्रताको धन्य है जो थोड़ासा भी किसी प्रकारका निमित्त पाकर सहसा दूसरे ही रूपमें परिणत हो जाते हैं।

तदन्तर दोनों देव श्रीरामके समीप गए। उनकी बालकों सदृष चेष्टाएँ देख विचारने लगे कि मोहके प्राबल्यको धिक्कार है जिसके प्रभावसे यह लोक-मर्यादा पुरुषोत्तम विह्वल जैसी चेष्टाएँ कर रहे हैं। इसके पश्चात् कृतान्तवक्रका जीव श्रीरामके समीप एक सूखे वृक्षको सींचने लगा, तथा जटायुका जीव एक ओर मरे हुए बैलोंको हलमें जोत शिला पर बीज बोने लगा। थोड़ी देरमें कृतान्कवक्रका जीव घृतके अर्थ पानीको मथने लगा तथा जटायुका जीव तेलके अर्थ कोल्हूमें रेत पीलने लगा। इस प्रकार दोनों देवोंने पागलों सदृश अनेक चेष्टाएँ की।

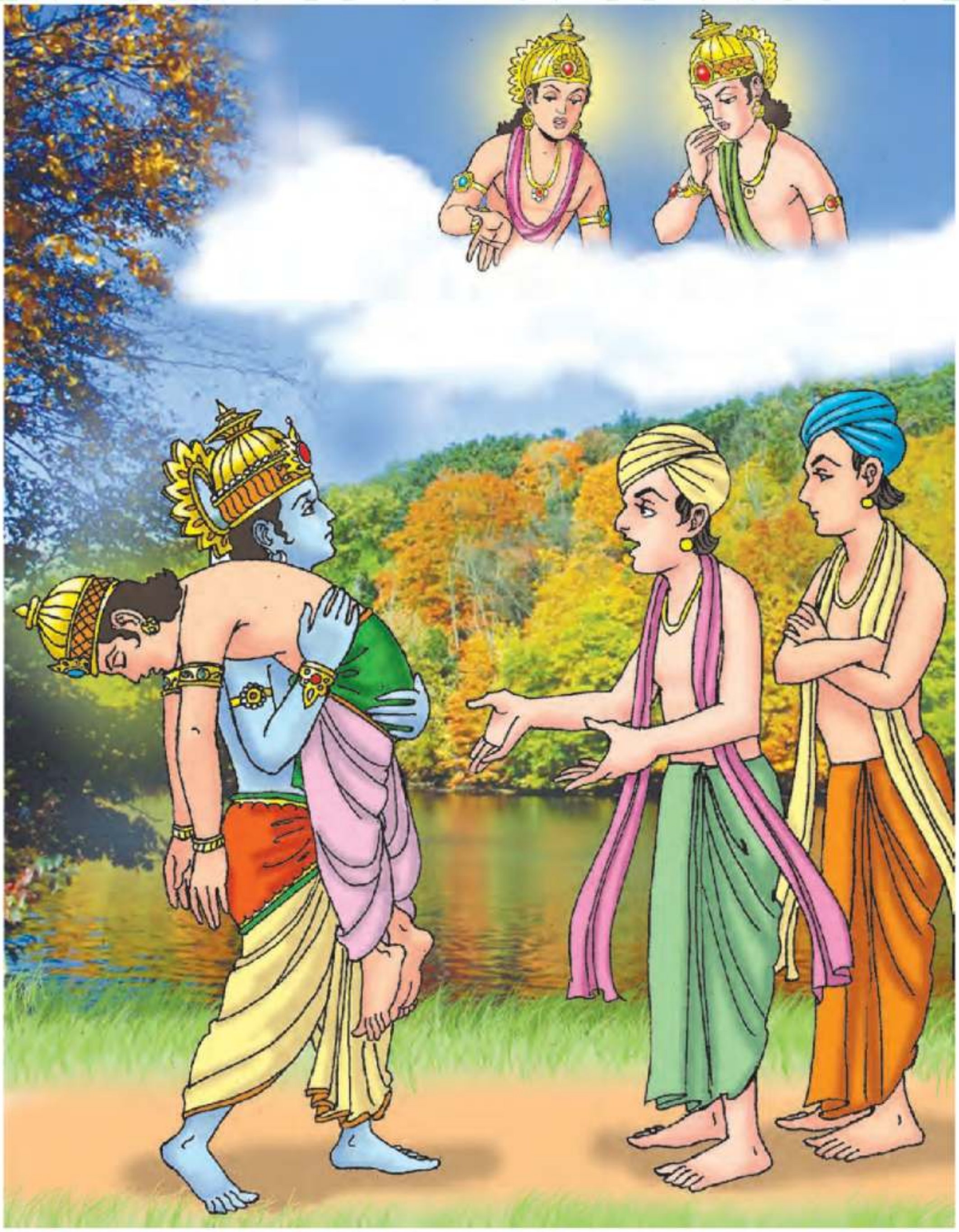

रामचन्द्रजीकी ऐसी दशा देखकर, कृतान्तवक्र सेनापति एवं जटायुके जीव जो कि देव हुए हैं वे रामचन्द्रजीको विधविध प्रकारसे समझाते हैं।

श्रीरामने उन देवोंकी समस्त व्यर्थ चेष्टाओंको देखकर कहा कि 'अरे! तुम वज्र मूर्ख हो जो सूखे पेड़ सींचते, कोल्हूमें रेत पीलते, मृत बैलोंको हलमें जोतकर शिला पर बीज बोते, तथा जलको मथते, हो? भला ऐसा करनेसे तुम्हें क्या लाभ है'? तब दोनों देव उलाहनासा देते हुए बोले कि 'तुम भी अपने भाईके मृत शरीरको कंधे पर रखे फिरते, उसे नाना प्रकारके वस्त्राभूषण पहनाते हो; भला ऐसा करनेसे तुम्हें क्या लाभ'? यह सुन श्रीराम अत्यन्त कुपित हो लक्ष्मणको भलीभाँति छातीसे लगाकर बोले कि 'हे कुबुद्धि! मेरे प्रिय भाईके प्रति तुम ऐसे अमंगल शब्द क्यों कहते हो'? इतनेमें जटायुका जीव मृत मनुष्यका कलेवर कंधे पर रखकर श्रीरामके निकट आया। तब श्रीराम कहने लगे कि 'अरे! तुम मृत मनुष्यके कलेवर कंधे पर क्यों रखे फिरते हो'? क्या तुम्हें इतना भी ज्ञान नहीं'? तब उसने कहा कि 'तुम प्रवीण होकर प्राण-रहित लक्ष्मणके शरीरको कंधे पर क्यों लिए फिरते हो'? 'तुम दूसरेका तो अणु-मात्र दोष देखते हो परन्तु अपना मेरु प्रमाण दोष नहीं देखते'! 'प्रीति समानता-वालोंसे होती है' अतः तुम्हें मूर्ख देख, हमें तुमसे स्नेह उत्पन्न हुआ इसलिए तुम्हें अधिक उन्मत्त तथा मूर्ख देख हम तुम्हारे निकट आए हैं।

श्रीराम देवोंके वचन सुन तथा शास्त्रोंके वचनोंका स्मरण कर सहसा सजाग हुए। जिस प्रकार वनमें मार्ग भूला हुआ मनुष्य एकाएक नगरका मार्ग पाकर प्रसन्न हो उठता है उसी प्रकार पुरुषोत्तम श्रीरामचन्द्रजी प्रतिबोधको पाकर अत्यन्त प्रसन्न हुए! तदन्तर दोनों देवोंने लोगोंको आश्चर्य उत्पन्न करानेवाली स्वर्गकी विभूति अंशतः प्रकट दिखाई। सहसा शीतल, मन्द, सुगन्ध पवन चलने लगी। समस्त आकाश देवोंके सुन्दर विमानोंसे आच्छादित हो गया। सुन्दर देवांगनाएँ वीणा, बांसुरी, मृदंगादि बजाकर नृत्य करने लगीं।

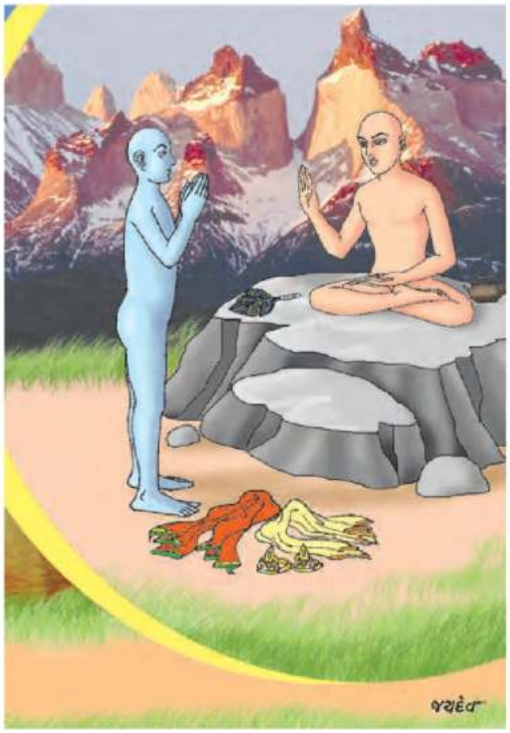

रामचन्द्रजीको वैराग्य उत्पन्न होनेसे वे मुनिदीक्षा धारण करके उग्र आराधना द्वारा उसी भवसे मुक्तिको प्राप्त होते हैं।

तदन्तर श्रीरामचंद्रजी शोकसे रहित हो लक्ष्मणकी दग्ध-क्रिया करनेको उद्यत हुए। विभिषण, विराधीत, सुग्रीवादि समस्त विद्याधर तथा नगर निवासीयोंने सम्मिलत हो नारायण (लक्ष्मण)के मृत शरीरको कर्पूरादि सुगन्धित द्रव्योंसे सरयू नदीके तट पर दग्ध किया।

महलमें आकर श्रीरामने शत्रुघ्नको कहा कि 'हे शत्रुघ्न! मैं मुनि-व्रत धारण कर सिद्ध-पदको प्राप्त करना चाहता हूँ अतएव तुम समस्त राज्य सम्हालो'। शत्रुघ्नने अत्यन्त विनयपूर्वक कहा कि 'हे तात! मैं भी तुम्हारे साथ मुनिव्रत धारण करूँगा। मुझे राज्यकी अभिलाषा नहीं है। हे भाई! संसारके काम, भोग, मित्र, बन्धुबान्धवादिसे कोई तृप्त नहीं हुआ। अतएव मैं भी आपके साथ सब त्याग कर आत्म-कल्याण करूँगा'।

श्रीरामने शत्रुघ्नको राज्यसे उदासीन तथा मुनि-व्रत धारण करनेको उद्यत देख क्षणिक विचार कर, लक्ष्मणके पुत्र अनंगको राज्य दिया और स्वयं श्रीजिनेश्वरी दीक्षा धारण करनेको उद्यत हुए। मुनिदीक्षा अंगीकार करके उग्र आराधनाके फलस्वरूप मांगीगिरिसे मुक्तदशाको प्राप्त करके अनंत अतीन्द्रिय सुखके भोक्ता हो गये।

*

भगवान मल्लिनाथ

अठारहवें तीर्थंकर भगवान अरहनाथके बाद एक हजार करोड़ वर्ष बीत जाने पर भगवान मल्लिनाथ हुए थे। क्रमशः मल्लिकुंवर कुमारने बाल अवस्थाको व्यतीत कर जब युवावस्थामें पदार्पण किया, तब उनके शरीरकी आभा बहुत ही सुन्दर हो गई थी। उस समय उनका सुन्दर सुडौल शरीर देखकर हर किसीकी आँखें संतृप्त हो जाती थीं। पचपन हजार वर्षकी उनकी आयु थी, पच्चीस धनुष ऊँचा उनका शरीर था और सुवर्णके समान शरीरकी कान्ति थी। जब भगवान मल्लिनाथकी आयु 100 वर्ष की हो गई, तब उनके पिता महाराज कुम्भने उनके विवाहकी तैयारी की। मल्लिनाथके विवाहोत्सवके लिए पुरवासियोंने मिथिलापुरीको खूब सजाया। अपने द्वारों पर मणियोंकी वन्दन-मालायें बांधी। भवनोंके शिखर पर पताकायें फहराई गयीं। मार्गमें सुगन्धित जल सींच कर फूल बरसाये और कई तरहके वाद्योंके शब्दसे नभको गुञ्जायमान कर दिया।

उधर राजपरिवार और पुरवासी विवाहोत्सवकी तैयारीमें लग रहे थे, तथा भगवान मल्लिनाथ राज-भवनके एकान्त स्थानमें बैठे हुए नगरकी शोभाके आधारसे जातिस्मृतिज्ञान आदिपूर्वक सोच रहे थे कि विवाह एक मीठा बन्धन है। मनुष्य इस बन्धनमें फँस कर आत्म-स्वातन्त्र्यसे सर्वथा वञ्चित हो जाते हैं। तब मैं क्यों व्यर्थ ही इस जंजालमें अपने-आपको फँसा दूँ? मेरा विश्वास है कि विवाह मेरे उच्च विचार और उन्नत भावनाओं पर एकदम पानी फेर देगा। विवाह मेरी उन्नतिके मार्गमें एक अचल

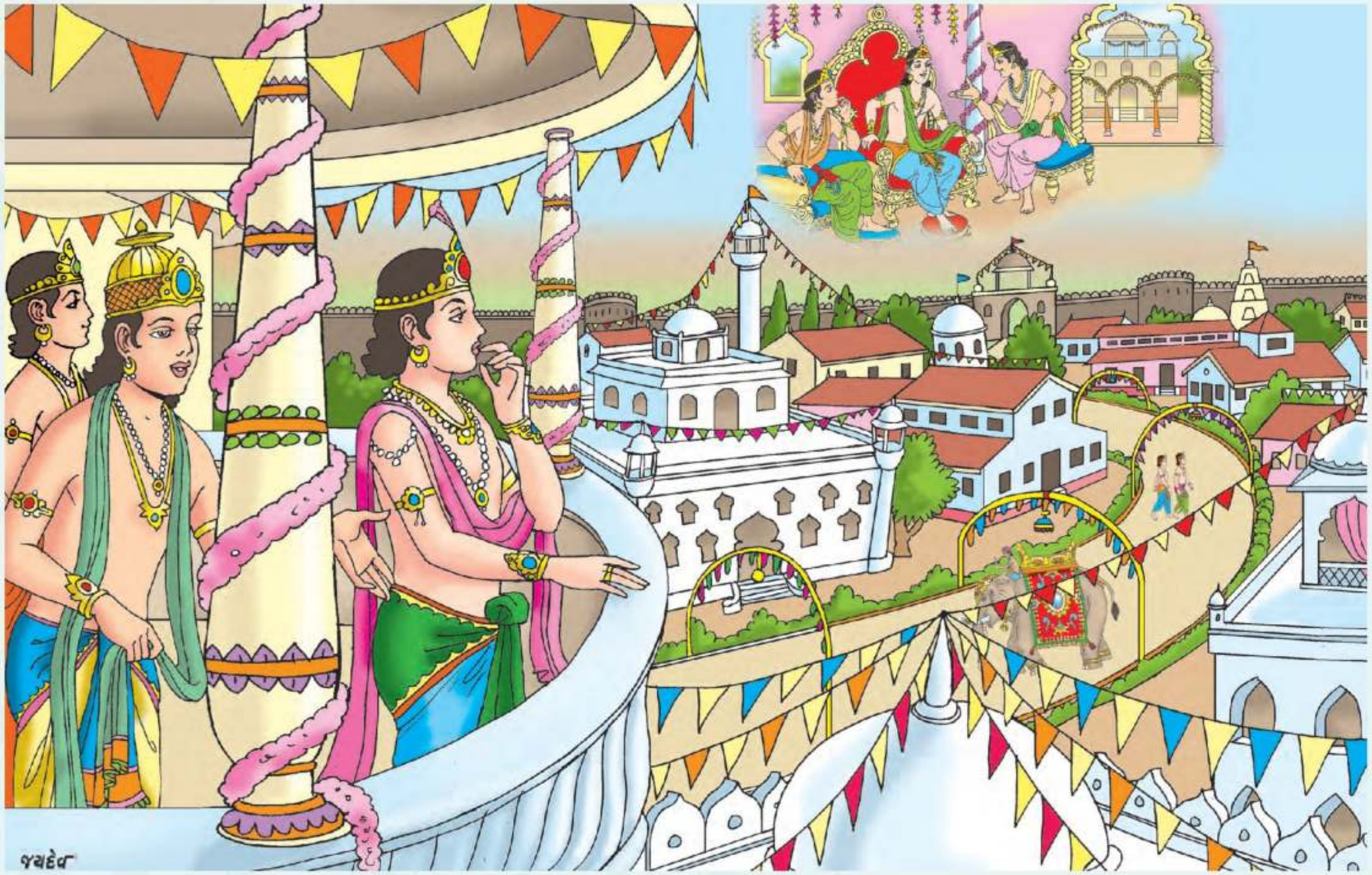

श्री मल्लिकुंवरकी शादीकी तैयारियाँ हो रही हैं। उसी समय नगरीकी शोभा देखकर
उनको पूर्वके देवभवका जातिस्मरणज्ञान होनेसे वैराग्य उत्पन्न होता है।

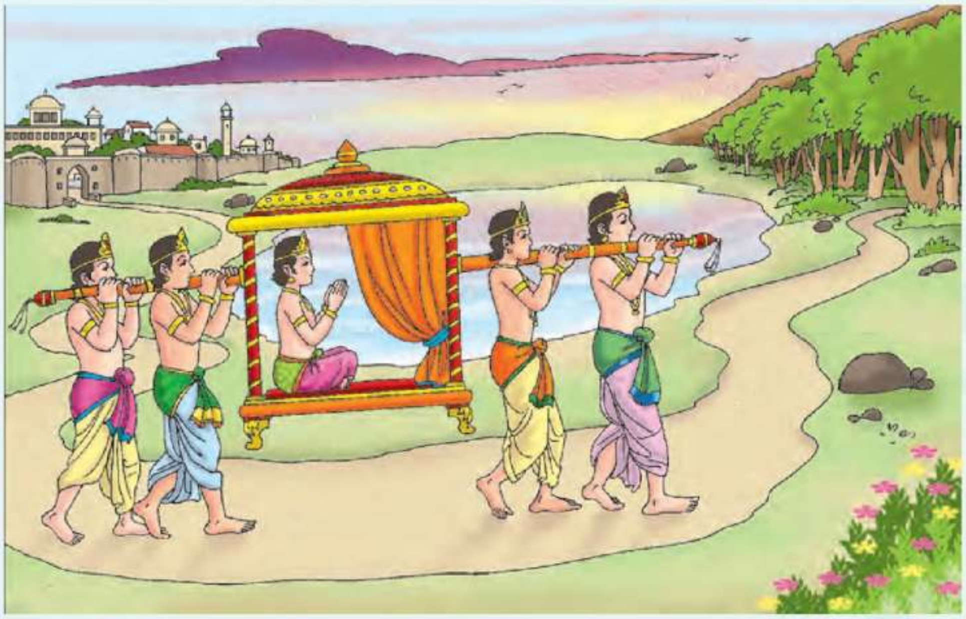

वैरागी तीर्थंकर मल्लिकुंवरको देव 'जयन्त नामकी पालखी'में बिठाकर दीक्षाके लिए श्वेतवनमें ले जाते हैं।

पर्वतकी तरह बाधक बनकर खड़ा हो जाएगा। इसलिए मैं आज यह निश्चय करता हूँ कि अब मैं इन भौतिक भोगोंमें आसक्त न होकर शीघ्र ही आत्मिक आनन्दकी प्राप्तिके लिए प्रयत्न करूँगा।

उसी समय लौकान्तिक देवोंने उनके उच्च आदर्श एवं विचारोंका समर्थन किया, जिससे उनका वैराग्य अधिक प्रकर्षताको प्राप्त हो गया। अपना कार्य समाप्त कर लौकान्तिक देव अपने-अपने स्थानों पर चले गये और सौधर्म आदि इन्द्रोंने आकर दीक्षा-कल्याणकका उत्सव करना आरम्भ कर दिया। भगवान मल्लिनाथके इस आकस्मिक विचार-परिवर्तनसे सारी मिथिला नगरीमें शोर मच गया। उभय पक्षके माता-पिताके हृदयको भारी ठेस पहुँची। पर उपाय ही क्या था? विवाहकी समस्त तैयारियाँ एकदम बन्द कर दी गई। उस समय नगरीमें श्रृंगार और शान्तरसका मिश्रित वातावरण हो गया। अन्तमें शान्तरसने श्रृंगारको धराशयी बनाकर सब

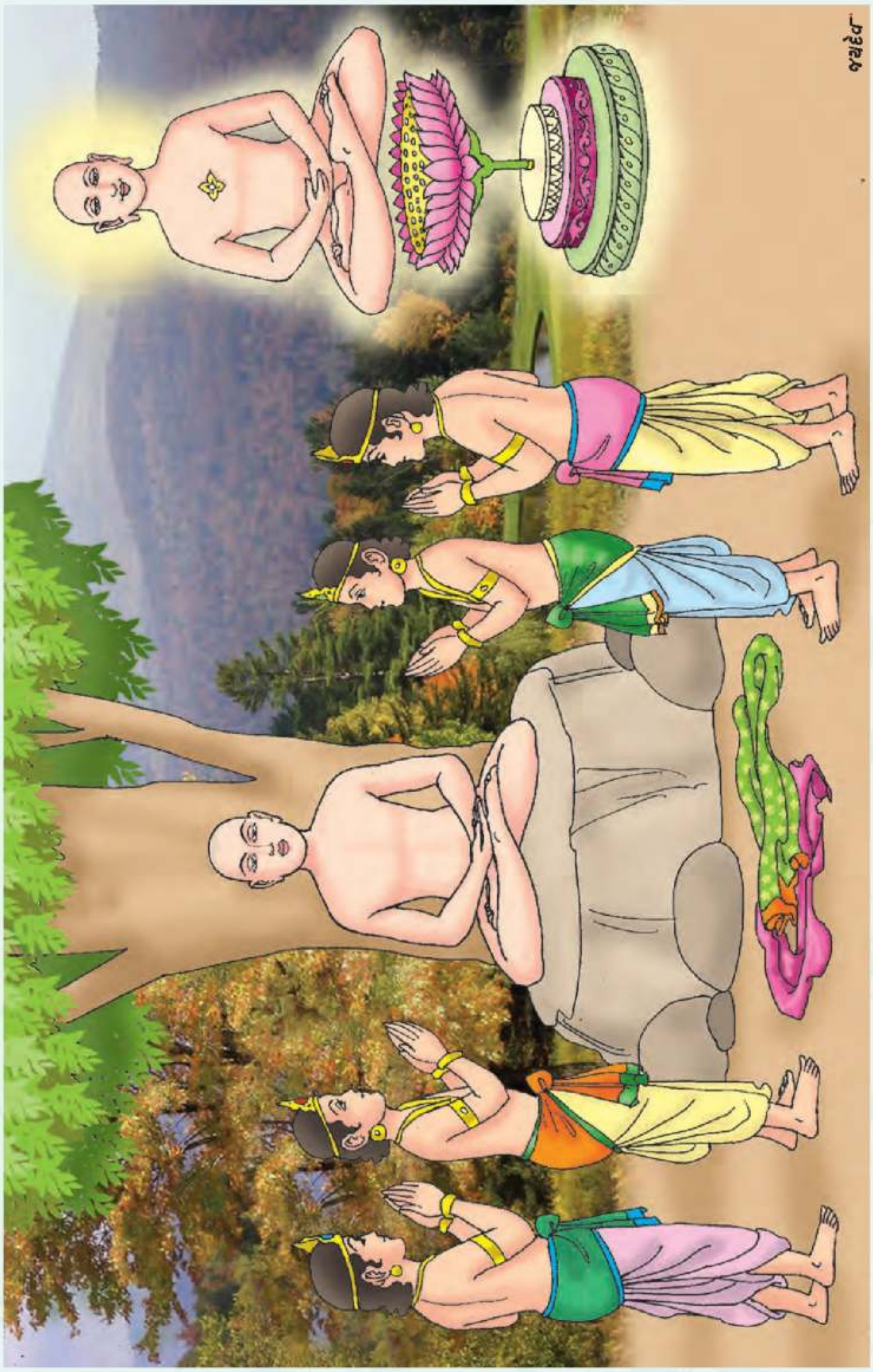

तीर्थंकर श्री मल्लिकुंवर दीक्षित होनेसे अन्य राजा एवं देवगण उनकी वंदना करते हैं। मल्लिनाथ मुनिवर धर्मकी उग्र आराधना करते हुए केवलज्ञानको प्राप्त कर समवसरणमें भव्यजीवोंको उपदेश देते हैं।

ओर अपना आधिपत्य जमा लिया था। देवोंने भगवान मल्लिनाथका अभिषेक कर उन्हें अच्छे-अच्छे वस्त्राभूषण पहनाये। वे दीक्षा-अभिषेकके पश्चात् देव निर्मित 'जयन्त' नामकी पालकी पर सवार होकर श्वेत वनमें पहुंचे और मार्गशीर्ष शुक्ला एकादशीके दिन अश्विनी नक्षत्रमें सन्ध्याके समय तीनसौ राजाओंके साथ मुनि दीक्षा धारण की तथा पञ्चमुष्टियोंसे केश लोच कर अलग कर दिये। उन्हें दीक्षा धारण करते ही मनःपर्ययज्ञान प्राप्त हो गया था। तीसरे दिन वे आहारके लिए मिथिलापुरी गये। वहाँ उन्हें राजा नन्दिषेणने भक्तिपूर्वक आहार दिया। पात्र-दानसे प्रभावित होकर महाराज नन्दिषेणके घरपर देवोंने पञ्चाश्चर्य प्रकट किये।

आहार लेकर भगवान मल्लिनाथ पुनः वनमें लौट आये और आत्मध्यानमें लीन हो गये। दीक्षा लेनेके छः दिनके बाद उन्हें उसी श्वेतवनमें अशोक वृक्षके नीचे मार्गशीर्ष शुक्ला एकादसीके दिन अश्विनी नक्षत्रमें प्रातःकालके समय 'केवलज्ञान' प्राप्त हो गया। उसी समय इन्द्र व देवोंने आकर ज्ञानकल्याणकका उत्सव मनाया। इन्द्रकी आज्ञा पाकर कुबेरने समवसरण (धर्म-सभा)की रचना की। दिव्यध्वनि द्वारा सप्त तत्त्व, नव पदार्थ, छः द्रव्य आदिका विवेचन किया। उन्होंने चारों गतियोंके दुःखोंका वर्णन किया, जिसे सुनकर अनेक नर-नारियोंने मुनि, आर्यिका और श्रावक-श्राविकाओंके व्रत धारण किये।

उनके समवसरणमें विशाख आदि अट्ठाईस गणधर थे, साढ़े पाँचसौ ग्यारह अंग और चौदह पूर्वके ज्ञाता थे, उनतीस हजार शिक्षक थे, दो हजार दो सौ अवधिज्ञानी थे, दो हजार दो सौ केवलज्ञानी थे, एक हजार चार सौ वादी थे, दो हजार नौ सौ विक्रिया-ऋद्धिके धारक थे और एक हजार सात सौ पचास मनःपर्ययज्ञानी थे। इस तरह सब मिलाकर उनकी

सभामें चालीस हजार मुनिराज थे। बन्धुषेणा आदि पचपन हजार आर्यिकाएं थीं, एक लाख श्रावक थे, तीन लाख श्राविकाएँ थी, असंख्यात देव-देवियाँ थीं और असंख्यात तिर्यंच थे।

भगवान मल्लिनाथने अनेक आर्य-क्षेत्रोंमें विहार कर पथ-भ्रान्त पथिकोंको मोक्षका सच्चा रास्ता बतलाया। जब उनकी आयु केवल एक माहकी बाकी रह गयी, तब उन्होंने श्री सम्मेदशिखर पर पहुंच कर पाँच हजार मुनियोंके साथ प्रतिमा-योग धारण कर लिया और अन्तमें योग-निरोध कर फाल्गुन शुक्ला पञ्चमीके दिन भरणी नक्षत्रमें संध्याके समय कर्मोंको नष्ट कर मोक्ष-महलमें प्रवेश किया। उसी समय देवोंने आकर सिद्ध-क्षेत्रकी पूजा की और निर्वाण कल्याणकका उत्सव मनाकर अपने पुण्यका सञ्चय किया।

❀

धर्मात्मा प्रद्युम्न

[पूर्वकथा : श्रीकृष्ण सुवर्णमयी द्वारिका नगरीके नारायण पदवी धारक राजा थे। उनके सत्यभामा आदि अनेक रानियाँ थी। उनमें सत्यभामा श्रीकृष्णकी मुख्य रानी थी। पर उसे अपने रूपादिका अभिमान होनेसे नारद व कृष्ण दोनोंको यह मद इष्ट न होनेसे नारदने भ्रमण द्वारा श्रीकृष्णके योग्य रुक्मिणी नामक कन्या ढूँढ ली, व उसका चित्र श्रीकृष्णको दिखाकर उन्होंने उनसे विवाह रचानेकी ठानी। अतः श्रीकृष्ण रुक्मिणीको ब्याहकर द्वारका ले आए उसके बाद आगे......]

श्रीकृष्णने सत्यभामाके महलके पास नाना प्रकारकी सम्पदाओंसे व्याप्त एवं योग्य परिवारजनोंसे सहित एक सुन्दर महल रुक्मिणीके लिए दिया। उसे महत्तरिका, द्वारपालिनी तथा सेवक आदिसे युक्त किया। नाना प्रकारके वाहन घोड़े, रथ बैल आदि दिये तथा पट्टरानी पदसे उसका गौरव बढ़ाया जिससे वह बहुत ही सन्तुष्ट हुई। इधर सत्यभामाको जब पता चला कि श्रीकृष्ण समस्त स्त्रियोंको अतिक्रान्त करनेवाली एक स्त्री लाए हैं और वह उन्हें अत्यधिक प्रिय है तब वह ईर्ष्यासे सहित होनेपर भी बड़ी धीरतासे उन्हें नाना प्रकारकी क्रीड़ाओमें रमण कराने लगी।

कृष्णकी बातोंसे सौतके सौभाग्यका अतिशय जानकर सत्यभामा उसका रूप लावण्य देखनेके लिए उत्सुक हो गयी और एक दिन पतिसे बोली 'हे नाथ! मुझे रुक्मिणी दिखलाईए तथा कानोंकी तरह मेरे नेत्रोंको भी हर्ष उपजाइए'। सत्यभामाकी बात स्वीकृत कर, वे हृदयमें कुछ रहस्य छुपाये हुए गये और मणिमय वापिकाके तट पर रुक्मिणीको खड़ा कर पुनः सत्यभामाके पास आ गये। तदन्तर 'तुम उद्यानमें प्रवेश करो, मैं तुम्हारी इष्ट रुक्मिणीको अभी लाता हूँ' यह कहकर उन्होंने सत्यभामाको तो आगे भेज दिया और आप स्वयं पीछेसे जाकर किसी झाड़ीकी ओटमें शरीर

छिपाकर खड़े हो गये। मणिमय आभूषणोंको धारण करनेवाली रुक्मिणी मणिमय वापिकाके समीप एक हाथसे आम्रकी लता पकड़कर पँजोके बल खड़ी थी। उस समय अतिशय सुशोभित बड़ी चोटी बायें हाथसे पकड़े थी। देवीके समान सुन्दर रूपको धारण करनेवाली रुक्मिणीको देखकर सत्यभामाने समझा की 'यह देवी है' इसलिए उसने उसके सामने फूलोंकी अंजली बिखेरकर तथा उसके चरणोंमें गिरकर अपने सौभाग्य और सौतके दौर्भाग्यकी याचना की। वह ईर्ष्यारूपी शल्यसे कलंकित जो थी। इसी समय श्रीकृष्णने आकर सत्यभामासे कहा कि 'अहा! दो बहिनोंका नीतियुक्त अपूर्व मिलन हो लिया?' श्रीकृष्णके वचन सुन सत्यभामा सब रहस्य जान गयी और कुपित हो बोली 'अरे! क्या आप हैं? हम दोनोंका इच्छानुरूप दर्शन हो इसमें आपको क्या मतलब?' तदन्तर श्रीकृष्णके वचन स्वीकारकर रुक्मिणीने सत्यभामाको विनयपूर्वक नमस्कार किया सो ठीक ही है क्योंकि उच्च कुलमें उत्पन्न हुए मनुष्योंके विनय स्वभावसे ही होता है। श्रीकृष्ण लतामण्डपोंसे सुशोभित उद्यानमें उन दोनों रानियोंके साथ चिरकाल तक क्रीड़ा कर अपने महलमें लौट गये।

तदन्तर सुखसागरमें निमग्न एवं पराक्रमसे सुशोभित कृष्णके अनेक दिन उन दोनों रानियोंके साथ जब एक समान व्यतीत हो रहे थे; तब एक दिन अत्यधिक स्नेहसे युक्त हस्तिनापुरके राजा दुर्योधनने इस प्रिय समाचारके साथ कृष्णके पास अपना दूत भेजा कि 'आपकी रुक्मिणी और सत्यभामा रानियोंमेंसे जिसके पहले पुत्र होगा वह यदि मेरी पुत्री उत्पन्न हुई तो उसका पति होगा'। दूतके उक्त वचन सुनकर श्रीकृष्ण बहुत प्रसन्न हुए और उन्होंने उक्त समाचार दोनों रानीयोंको कह सुनाया।

तदन्तर चतुर्थ स्नानके बाद रुक्मिणी जब रात्रिमें शय्या पर सोयी तब उसने स्वप्नमें हंसविमानके द्वारा आकाशमें विहार किया। जागने पर

उसने वह स्वप्न पतिदेव श्रीकृष्णके लिए कहा और उसके उत्तरमें उन्होंने कहा कि तुम्हें आकाशमें विहार करनेवाला महान पुत्र होगा। पतिके वचन सुनकर रुक्मिणी, प्रातःकालके समय सूर्यकी किरणोंसे संसर्गको प्राप्त हुई कमलिनीके समान विकासको प्राप्त हुई। तदन्तर श्रीकृष्ण तथा अन्य समस्तजनोंके परम आनन्दको बढ़ाता हुआ अच्युतेन्द्र, स्वर्गसे अवतार ले रुक्मिणीके गर्भमें आया।

उसी समय रुक्मिणी व सत्यभामाने भी सिरसे स्नान कर उत्तम स्वप्नपूर्वक स्वर्गसे च्युत हुए पुत्रको गर्भमें धारण किया। जिनकी यशरूपी लता बढ़ रही थी ऐसे बढ़ते हुए दोनों गर्भोंने अपनी अपनी माताओं और पिताके परम आनन्दको वृद्धिंगत किया। प्रसवका महिना पूर्ण होनेपर रुक्मिणीने उत्तम मनुष्यके लक्षणोंसे युक्त पुत्र उत्पन्न किया उसी साथ-साथ सत्यभामाने भी रात्रिमें उत्तम पुत्रको जन्म दिया। दोनों ही रानियोंने हितके इच्छुक एवं शुभ समाचार देनेवाले पुरुष रात्रिके ही समय एक साथ श्रीकृष्णके पास भेजे। उस समय श्रीकृष्ण शयन कर रहे थे। इसलिए सत्यभामा द्वारा भेजे सेवक उनके सिरके पास और रुक्मिणीके द्वारा भेजे सेवक उनके चरणोंके समीप खड़े हो गये। जब श्रीकृष्ण जागे तो उनकी दृष्टि चरणोंके पास खड़े सेवकों पर पड़ी। उन्होंने भाग्य-वृद्धिके लिए पहले रुक्मिणीके पुत्र-जन्मका समाचार सुनाया; जिससे प्रसन्न होकर कृष्णने उन्हें अपने शरीर स्थित आभूषण पुरस्कारमें दिये। तदन्तर जब कृष्णने मुड़कर दूसरी ओर देखा तो सत्यभामाके सेवकजनोंने उनकी स्तुति कर, उन्हें सत्यभामाके पुत्रोत्पत्तिका समाचार सुनाया, जिससे संतुष्ट होकर कृष्णने उन्हें भी पुरस्कारमें धन दिया।

उसी समय अग्निके समान देदीप्यमान धूमकेतु नामका एक महाबलवान असुर विमानमें बैठकर आकाशमार्गसे जाता हुआ रुक्मिणीके महल पर आया। आनेके साथ ही उसका विमान रुक गया, जिससे कुछ

आश्चर्यमें पड़कर वह नीचेकी ओर देखने लगा। वह विभंगावधि ज्ञानरूपी नेत्रको धारण करनेवाला था ही; इसलिए उसके द्वारा रुक्मिणीके पुत्रको देख क्रोधसे उसके नेत्र लाल हो गये और दर्शनरूपी ईन्धनसे उसकी पूर्व वैररूपी अग्नि भड़क उठी। उस पापीने आते ही कड़ी रक्षामें नियुक्त पहरेदारोंको, परिवारके लोगोंको तथा स्वयं रुक्मिणीको महानिद्रामें निमग्न कर पुत्रको उठा लिया और वज़नमें पर्वतके समान भारी पुत्रको दोनों भुजाओंसे लेकर वह मलिनबुद्धि एवं श्यामरंगका धारक महाअसुर आकाशमें उड़ गया। आकाशमें ले जाकर वह विचारने लगा कि इस पूर्व भवके वैरीको क्या मैं हाथोंसे मसल डालूँ? या नखोंसे चीरकर आकाशमें पक्षियोंकी बलियोंके लिए बिखेर दूँ? अथवा मुझसे द्रोह करनेवाले इस क्षुद्र शत्रुको नाकोंके समूहसे (चने चबानेरूप) महाभयंकर, मगरों एवं ग्राहोंके समूहसे भरे हुए समुद्रमें गिरा दूँ? अथवा यह मांसका पिंड तो है ही। इसके मारनेसे क्या लाभ है? यह रक्षकोंसे रहित ऐसे ही छोड़ दिया जाएगा तो अपने-आप मर जायेगा। बालकके पुण्यसे यह विचार करता वह महाअसुर जा रहा था कि दूरसे खदिर अटवीको देख वह नीचे उतरा। वहाँ तक्षशिलाके नीचे उस बालकको रखकर वह धूमकेतु नामका असुर, धूमकेतु तारेके समान शीघ्र अदृश्य हो गया।

तदन्तर उसी समय मेघकूट नगरका राजा कालसंवर, अपनी कनकमाला रानीके साथ पृथ्वीके समस्त स्थलों पर विहार करता हुआ विमान-द्वारा आकाशमार्गसे वहाँ आया सो बालकके प्रभावसे उसकी गति रुक गयी। 'यह क्या है?' इस प्रकार विचारकर कालसंवर परम आश्चर्यको प्राप्त हुआ। नीचे उतरकर उसने हिलती हुई एक बड़ी मोटी शिला देखी। स्वेच्छासे शिला हटाकर जब उसने देखा तो उसके नीचे अक्षत शरीर, कामदेवके समान आभावाला एवं सुवर्णके समान कान्तिमान वह बालक देखा। दयासे युक्त हो, कालसंवरने उस बालकको उठा लिया और 'तुम्हारे

पुत्र नहीं है इसलिए यह तुम्हारा पुत्र हुआ, लो' इस प्रकार मधुर शब्द कहकर प्रियाको देनेके लिए उद्यत हुआ। पहले तो विद्याधरी कनकमालाने दोनों हाथ पसार दिये पर पीछे चतुर एवं दूर तक देखनेवाली उस विद्याधरीने अपने हाथ संकोच लिये और उस प्रकार खड़ी हो गई मानों पुत्रको चाहती ही न हो। 'प्रिये! यह क्या है?' इस प्रकार पतिके कहनेपर उसने कहा कि आपके उच्च कुलमें उत्पन्न हुए पांचसौ पुत्र हैं , सो जब वे इस अज्ञात कुलवाले पुत्रको अहंकारसे उन्मत्त हो, शिरमें थप्पड मारेंगे तब मैं वह दृश्य देखनेको समर्थ न हो सकूँगी। इसलिए मेरा नपूती रहना ही अच्छा है।

रानीके इस प्रकार कहने पर कालसंवरने उसे सान्त्वना दी और कानका सुवर्ण-पत्र ले 'यह युवराज है' ऐसा कहकर उसे पट्ट बाँध दिया। तदन्तर नीति-निपुण कनकमालाने सन्तुष्ट होकर वह पुत्र ले लिया। पुत्र सहित दोनों मेघकूट नामक श्रेष्ठ नगरमें प्रविष्ट हुए। अतिशय निपुण राजा कालसंवरने नगरमें यह घोषणा कराई कि 'गूढ़ गर्भको धारण करनेवाली महादेवी कनकमालाने आज शुभ पुत्रको जन्म दिया है' पुण्यके भण्डारस्वरूप उस पुत्रका जन्मोत्सव कराया। जन्मोत्सवमें विद्याधरियोंके समूह नृत्य कर रहे थे और उनके नूपुरोंकी रुनझुन न्यारी ही शोभा प्रगट कर रही थी। स्वर्णके समान श्रेष्ठ कान्तिका धारक होनेसे उसका नाम प्रद्युम्न रखा गया। वहाँ सैंकडों विद्याधर-कुमारोंके द्वारा सेवित होता हुआ वह प्रद्युम्नकुमार दिनों-दिन बढ़ने लगा।

इधर द्वारिकापुरीमें जब रुक्मिणी जागृत हुई तो उसने पुत्रको नहीं देखा। तदन्तर वृद्ध धायोंके साथ उसने जहाँ-तहाँ देखा; पर जब प्रयत्न सफल नहीं हुआ, तब वह जोर-जोरसे इस प्रकार विलाप करने लगी कि 'हाय पुत्र! तुझे कौन हर ले गया है?' विधाताने मेरे नेत्रोंको निधि

श्रीकृष्णकी रानी रुक्मिणी पुत्रका अपहरण होनेसे शोकमग्न हो जाती है,
यह समाचार जानकर श्रीकृष्ण एवं नारदजी पुत्रको ढूँढ लानेका विश्वास दिलाते है।

दिखाकर क्यों छीन ली है? अवश्य ही मैंने दूसरे जन्ममें किसी स्त्रीको पुत्रसे वियुक्त किया होगा; नहीं तो बिना कारणके यह ऐसा फल कैसे प्राप्त होता? रुक्मिणीके इस प्रकार करुण विलाप करनेपर परिवारके लोग भी रोने लगे और इस तरह रोनेके कारण एक जोरदार शब्द खड़े हुए।

तदन्तर सब वृतान्त जानकर भाई-बान्धवों एवं सुन्दर स्त्रियोंके साथ कृष्ण भी वहाँ शीघ्र आ पहुँचे। रोनेका शब्द सुनकर बलदेव भी आ गये। अपने नन्दक नामक खड़गको हाथमें लिए श्रीकृष्ण अपनी भुजाओंके पराक्रम तथा अपने प्रमादकी निन्दा करने लगे। वचन बोलनेमें अतिशय चतुर श्रीकृष्ण कहने लगे बाह्य अनुकूलता व प्रतिकूलतामें 'देव और पुरषार्थमें देव ही परम बलवान है। अतः संसारमें इस बाह्य साधनोंमें अकारण पुरुषार्थको धिक्कार है। अन्यथा खुली तलवारकी धारासे सुशोभित मुझ वासुदेवका भी पुत्र दूसरोंके द्वारा हरा जाता?' इत्यादि बहुत बोलनेवाले श्रीकृष्णने रुक्मिणीसे कहा कि 'हे प्रिये! इस विषयमें अधिक शोकयुक्त न होओ। हे धीरे! धीरता धारण करो। जो पुत्र स्वर्गसे च्युत हो तुम्हारे और हमारे उत्पन्न हुआ है वह साधारण पुत्र नहीं है। उसे इस संसारमें अवश्य ही भोगोंका भोगनेवाला होना चाहिए। इसलिए जिस प्रकार सूक्ष्म दृष्टि मनुष्य आकाशमें सूक्ष्म बिम्बको धारण करनेवाले प्रतिपदाके चद्रमाको खोजते हैं उसी प्रकार मैं लोगोंके नेत्रोंको आनन्द देनेवाले तेरे पुत्रको लोकमें सर्वत्र खोजता हूँ।'

इस प्रकार आँसुओंसे जिसके दोनों कपोल झुल रहे थे ऐसी प्रिया रुक्मिणीको शान्त कर श्रीकृष्ण पुत्रके खोजनेमें उपाय करने लगे। उसी समय निरन्तर उद्यम करनेवाले नारद ऋषि वहाँ श्रीकृष्णके पास आये और सब समाचार सुनकर शोकसे क्षणभरके लिए निश्चलताको प्राप्त हो गये। उन्होंने सब ओर तुषारसे जले कमलोंके समान मुरझाये हुए यादवोंके मुख

बड़े आश्चर्यके साथ देखे। तदन्तर शोक दूर कराकर नारदने कृष्णसे कहा कि 'हे वीर! शोक छोड़ो, मैं पुत्रका समाचार लाता हूँ। यहाँ जो अवधिज्ञानी अतिमुक्तक मुनिराज थे वे तो केवलज्ञानरूपी नेत्रको प्राप्त कर मोक्ष जा चुके हैं। और तीन ज्ञानके धारक नेमिकुमार हैं वे जानते हुए भी नहीं कहेंगे। किस कारणसे नहीं कहेंगे? यह हम नहीं जानते। इसलिए मैं पूर्वविदेहक्षेत्रमें जाकर तथा सीमन्धर भगवानसे पूछकर पुत्रका सब समाचार आपके लिए प्राप्त कराऊँगा'। श्रीकृष्णको इस भांति समझाकर नारद वहाँसे निकल रुक्मिणीके भवन पहुँचे और वहाँ शोकरूपी तुषारसे जले हुए रुक्मिणीके मुख-कमलको देख स्वयं हृदयसे शोक करने लगे परन्तु बाह्यमें धैर्यको धारण किये रहे। रुक्मिणीने उठकर उनका सत्कार किया। अनन्तर वे उसीके निकट आसनपर बैठ गये। रुक्मिणी पिताके तुल्य नारदको देखकर गला फाड़कर रोने लगी सो ठीक है क्योंकि सज्जनोंके समीप पुराना शोक भी नवीनके समान हो जाता है। अत्यन्त चतुर नारदमुनि, उसके शोक-सागरको हलका करनेके लिए ही मानो मनको आनन्दित करते हुए इस प्रकार वचन बोले।

'हे रुक्मिणी! तू शोक छोड़, तेरा पुत्र कहीं जीवित है भले ही पूर्वभवका कोई वैरी किसी तरह हराकर ले गया है। श्रीकृष्णसे–तुझसे जो उसकी उत्पत्ति हुई है यही उस महात्माके दीर्घायुष्यको सूचित कर रही है। हे पुत्री! तू जानती है कि इस संसारमें प्राणियोंको सुख-दुःख उत्पन्न करनेवाले संयोग होते ही रहते हैं। परन्तु जो कर्मोंकी अधीनताको जाननेवाले हैं एवं ज्ञानके द्वारा उन्मीलित बुद्धिरूपी नेत्रोंको धारण करनेवाले हैं ऐसे यादवोंके ऊपर वे संयोग और वियोग शत्रुओंके समान अपना प्रभाव नहीं जमा सकते हैं। तू तो जिन-शासनके तत्त्वको जाननेवाली एवं संसारकी स्थितिकी जानकार है अतः शोकके वशीभूत मत हो। मैं शीघ्र ही तेरे पुत्रका समाचार लाता हूँ।' इस प्रकार वचनरूपी अमृतसे उस कृशांगीको

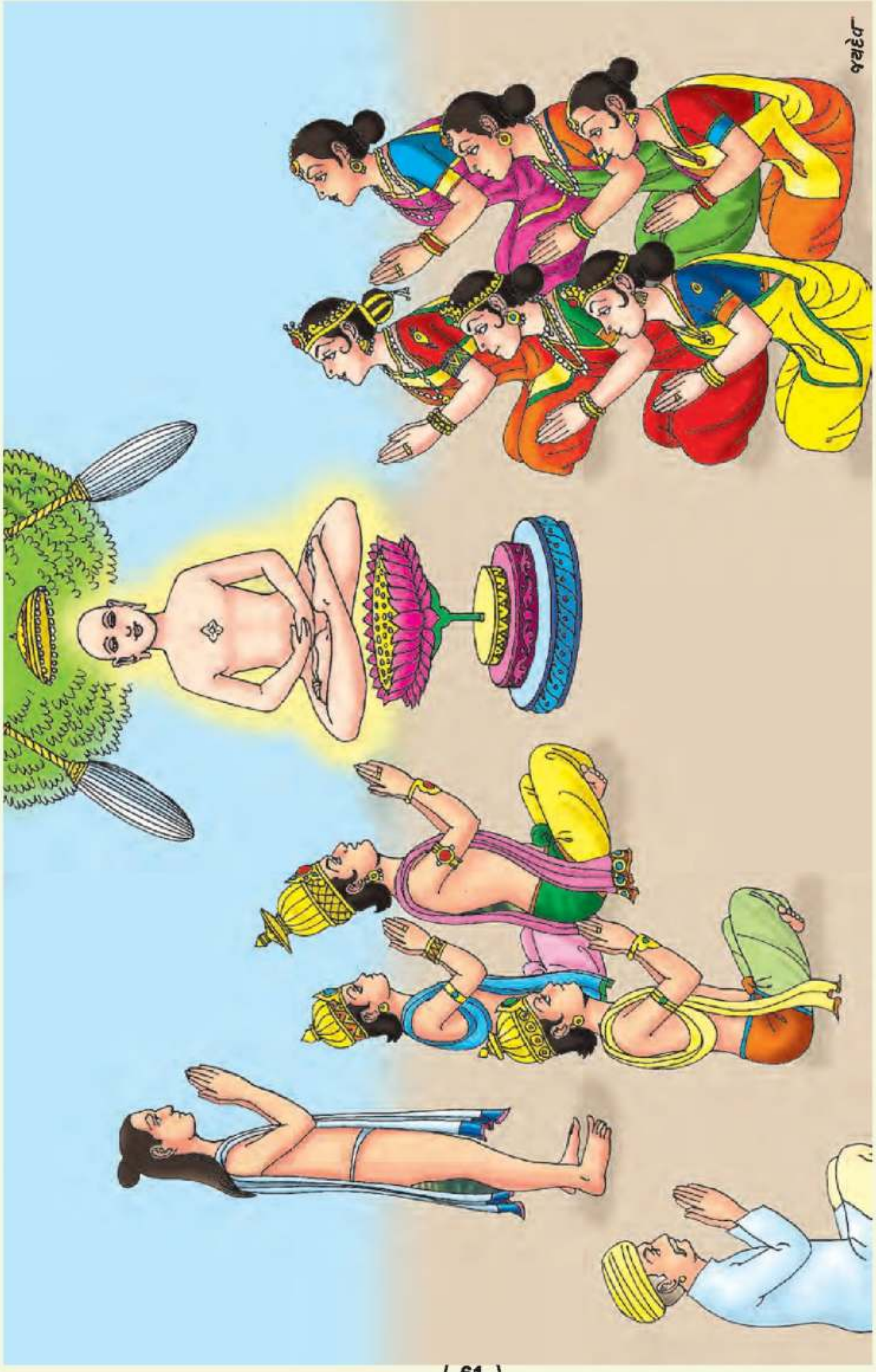

नारदजी पूर्व विदेहके तीर्थंकर श्री सीमंधर भगवानके समवसरणमें जाकर प्रद्युम्नके बारेमें जानकारी प्राप्त करते है।

समझाकर नारदमुनि पुण्डरीकिणी नगरीमें मनुष्य, सुर, असुरोंसे सेवित श्री सीमन्धर जिनेन्द्रके समवसरणमें पहुँचे और सीमंधर भगवानके उन्होंने दर्शन किये। हाथ जोड़ मुखसे पवित्र स्तोत्रका उच्चारण कर, उन्होंने जिनेन्द्र भगवानको नमस्कार किया और उसके बाद वे राजाओंकी सभामें जा बैठे।

वहाँ समवसरणमें उस समय पाँच सौ धनुषकी ऊँचाईवाले पद्मरथ चक्रवर्ती बैठे थे। दश धनुष ऊँचे नर-प्रशंसित नारदको देखते ही उसने उन्हें कौतुकवश अपने हस्त-कमलोंसे उठाकर भगवानसे पूछा कि 'हे नाथ! यह मनुष्यके आकारका कीड़ा कौन-सा है? और इसका क्या नाम है?' तदन्तर सीमन्धर भगवानने सब रहस्य कहा। उन्होंने बताया कि 'जम्बूद्वीपके भरत क्षेत्रके नौवें नारायणके हितमें उद्यत रहनेवाला यह नारद है।' यह सुन चक्रवर्तीने फिर पूछा कि 'हे स्वामिन्! यह यहाँ किसलिए आया है?' इसके उत्तरमें धर्मचक्रके प्रवर्तक सीमन्धर भगवानने चक्रवर्तीके लिए प्रारम्भसे लेकर सब समाचार कहा। साथ ही यह भी कहा कि 'उस बालकका नाम प्रद्युम्न है। वह सोलहवाँ वर्ष आने पर बहुत लाभोंको प्राप्त कर अपने माता-पिताके साथ पुनः मिलेगा। प्रज्ञप्ति नामक महाविद्यासे जिसका पराक्रम चमक उठेगा' ऐसा वह प्रद्युम्न इस पृथ्वी पर समस्त देवोंके लिए भी अजय हो जायेगा।

नारद सीमंधर जिनेन्द्रको नमस्कार कर वहाँसे आकाशमार्गमें जा उड़े और मेघकूट नामक पर्वत पर आ पहुँचे। वहाँ पुत्रलाभके उत्सवसे नारदने कालसंवर राजाका अभिवादन किया तथा पुत्रवती कनकमाला नामकी देवीकी स्तुति की। सैंकड़ों कुमार जिनकी सेवा कर रहे थे ऐसे रुक्मणी-पुत्रको देख नारदको बड़ी प्रसन्नता हुई और वे प्रसन्नताके वेगको मनमें छिपाये हुए परम रोमांचको प्राप्त हुए। कालसंवर आदिने नमस्कार कर नारदका सन्मान किया। तदन्तर आशीर्वाद देकर वे बहुत ही शीघ्र आकाशमें उड़कर द्वारिका जा पहुँचे। वहाँ आकर जिस प्रकार गए, जिस प्रकार देखा और

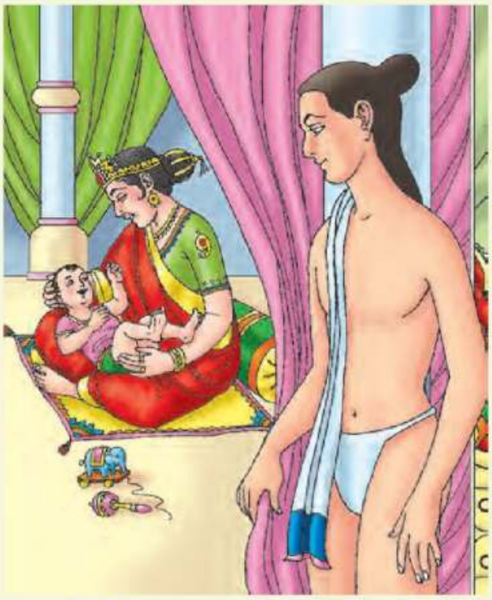

नारदजी सीमंधर भगवानके पाससे सुनी हुई बात अनुसार विजयार्ध पर्वतके कालसंवरके महलमें जाकर प्रद्युम्नको स्वयं देखकर विश्वास आनेसे प्रसन्न होते हैं।

जिस प्रकार सुना वह सब प्रकट कर नारदने प्रद्युम्नकी कथा कर यादवोंके लिए हर्ष प्रदान किया। तदन्तर जिनका मुखकमल खिल रहा था ऐसे नारदने रुक्मणी रानीको देखकर उसे सीमन्धर जिनेन्द्रकी दिव्यध्वनिमें आई सब समाचार सुनाये। अन्तमें उन्होंने कहा कि हे रुक्मणि! मैंने विद्याधरोंके राजा कालसंवरके घर क्रीड़ा करता हुआ तुम्हारा पुत्र देखा है। वह देवकुमारके समान अत्यन्त रूपवान है। सोलह लाभोंको प्राप्त कर तथा प्रज्ञप्तिविद्याका संग्रह कर तुम्हारा वह पुत्र सोलहवें वर्षमें अवश्य ही आयेगा।

हे रुक्मणि! जब उसके आनेका समय होगा तब तेरे उद्यानमें असमयमें ही प्रिय समाचारको सूचित करनेवाला मयूर अत्यन्त उच्च स्वरसे शब्द करने लगेगा। तेरे उद्यानमें जो मणिमय वापिका सूखी पड़ी है वह उसके आगमनके समय कमलोंसे सुशोभित जलसे भर जावेगी। तुम्हारा शोक दूर करनेके लिए, शोक दूर होनेकी सूचना देनेवाला अशोक वृक्ष असमयमें ही अंकुर और पल्लवोंको धारण करने लगेगा। तेरे यहां जो गूँगे हैं वे तभी तक गूँगे रहेंगे जबतक कि प्रद्युम्न दूर है। उसके निकट आते ही वे गूँगापन छोड़ देवेंगे। इन प्रकट लक्षणोंसे तू पुत्रके आगमनका समय जान लेना। सीमन्धर भगवानके वचनोंको अन्यथा मत मान। इस प्रकार नारदके हितकारी वचन सुन रुक्मणिके स्तनोंसे दूध झरने लगा। वह श्रद्धापूर्वक प्रणाम कर इस प्रकार कहने लगी कि हे भगवन्! वात्सल्य प्रकट

करनेमें जिनका चित्त सदा उद्यत रहता है ऐसे आपने आज मेरा उत्तम बन्धुजनोंका ऐसा कार्य किया है जो दूसरोंके लिए सर्वथा दुष्कर है। हे मुने! हे धीर! हे नाथ! मैं पुत्रके शोकाग्निमें निराधार जल रही थी सो आपने हाथका सहारा दे मुझे बचा लिया है। सीमन्धर भगवानने जो कहा है वह वैसा ही है ओर मुझे विश्वास हो गया है कि मेरे जीते रहते अवश्य ही पुत्रके दर्शन होंगे। मैं अपना हृदय कठोर कर जिनेन्द्र भगवन्के कहे अनुसार जीवित रहूँगी। अब आप इच्छानुसार पधारिये और मुझे आपके दर्शन फिर प्राप्त हो इस बातका ध्यान रखिए। इस प्रकार नारदसे निवेदन कर रुक्मणिने उन्हें प्रणाम किया और नारद आशीर्वाद देकर चले गए। तदन्तर रुक्मणि शोक छोड़ श्रीकृष्णकी इच्छाको पूर्ण करती हुई पूर्वकी भाँति रहने लगी।

इधर प्रद्युम्नकुमार कालसंवर व कनकमालाके वहाँ बड़ा होता हुआ युवावस्था प्राप्त कर कामदेवकी भांति शोभने लगा। पूर्वभवके संस्कारवश कनकमाला प्रद्युम्न पर मोहित होने लगी। जिससे उसका प्रद्युम्न पर पुत्रत्वका मोह नष्ट होकर कामदेवका मोह धारण होने लगा। प्रद्युम्नकी बुद्धिमत्ताने माताका यह बदलाहट भाँप लिया, अतः मातासे रोहिणी व प्रज्ञप्ति विद्याओंको चालाकीसे पा लिया व कामासक्त माँको योग्य शिक्षा भी दे दी। जिससे कनकमाला स्त्रिचरित्रों द्वारा गलत आरोप डालकर कालसंवर और 500 अन्य कुमारोंको प्रद्युम्नके विरुद्ध किया। जिससे एक ओर कालसंवर, उसके 500 पुत्र व समस्त सेना व दूसरी ओर प्रद्युम्नके बीच भयंकर युद्ध हुआ उसमें जीत प्रद्युम्नकी हुई।

16 वर्षकी अवधि पूर्ण होनेके आसारसे नारदजी इधर आये हुए आकाशमें बैठे-बैठे माता-पितासे अनबन व लड़ाई देख भगवानकी वाणीकी चरितार्थता देख प्रसन्न हुए। लड़ाईमें जीत होनेके बावजूद भी प्रद्युम्नको

कुंवर प्रद्युम्न सोलह वर्षकी उंमरमें द्वारिकामें स्वयं उपस्थित होकर अपनी माताको वंदन करते है।

माता-पितासे अलग होकर अकेले हो जानेके भयसे शोकाग्रस्त देखकर नारदजी उसके पास आये व उसे उसकी सच्ची माता रुक्मिणि व सच्चे पिताके बारेमें सब कुछ बताया व द्वारिका ले जानेको उद्यमवंत हुए। रास्तेमें जगहों-जगह पर जीत प्राप्त करते हुए प्रद्युम्न माता-पिताको मिले, प्रणाम किया और द्वारिकामें रहने लगे।

कुमार प्रद्युम्नको अंतरंगसे वैराग्य उत्पन्न होनेसे उन्होंने पिता-श्रीकृष्ण, माता-रुक्मिणी तथा अनेक रानीयोंसे विदा लेकर राज्यके भोगोंको तृणवत् जानकर उनका त्याग किया। भगवान नेमिनाथके समक्ष गिरनार पर्वत पर जैनेश्वरी दिगम्बर दीक्षा अंगीकार की एवं उग्र आत्मसाधना करके केवलज्ञान प्राप्त किया तथा योग निरोध करके गिरनार पर्वत परसे ही सादि अनंत ऐसी सिद्धदशाको प्राप्त हुए।

इस कथासे यह बोध प्राप्त होता है कि प्रद्युम्नका पूर्वभवके बुरे भावोंके फलमें बाल्यावस्थामें ही उनके पूर्व भवके शत्रुने हरण किया, तथा अच्छे भावोंके फलमें उनको अनेक विद्याओंकी प्राप्ति सह अनुकूल सामग्री प्राप्त हुई एवं आत्मशुद्धिमय साधनाके फलमें वे मुक्तिको प्राप्त हुए। अतः हमें भी अपने भावोंके फलको सोचकर हितरूप भावोंमें लगना चाहिए।

धन्य वह हाथी

महाराज भरतजी अमरावती(स्वर्ग)को भी लज्जित करनेवाली अयोध्यापुरीमें इन्द्रके समान राज्यलक्ष्मी पाकर भी, उससे उदास होकर, निरन्तर विषय-भोगोंकी निन्दा किया करते थे, तथा बारम्बार संसारकी अनित्यता, अशरणत्व, एकत्वादि बारह प्रकारकी भावनाओंका चिन्तन कर संसारसे वैराग्यको दृढ़ किया करते थे। जिस प्रकार वनमें जानेकी अत्यन्त बलवती इच्छा रखनेवाला सिंह, पिंजड़ेमें पड़ा अत्यन्त खिन्न तथा उदास रहता है उसीप्रकार भरतजीको गृहवास त्याग कर वनमें महाव्रत धारण करनेकी तीव्र इच्छा थी, परन्तु विवश हो पिंजड़ेके सिंहके सदृश घरमें भोगोंकी सामग्रीसे उदास रहते थे। यद्यपि राज्यका शासन करते थे तथापि उसमें उनका कोई ममत्व नहीं था। वे जल-कमलपत्रवत् अलिप्त थे।

एक दिन भरतजी शान्तचित्त हो गृह त्यागनेको उद्यमी हुए, परन्तु केकईके कहनेसे श्रीरामचन्द्रजीने उन्हें येन-केन प्रकारेण महाव्रत धारण करनेसे रोक लिया। भरतजीने श्रीरामचन्द्रजीसे कहा कि 'आपके प्रसादसे अपने घरमें ही स्वर्गके सदृश सुख-भोग हैं, परन्तु उनमें मेरी रुचि नहीं है यह समस्त संसार अत्यन्त विषम तथा महा भयानक है। जहाँ मृत्युरूपी पाताल कुण्ड अत्यन्त ही विषम है। इस संसाररूपी सागरमें जन्म-मरणरूपी लहरें निरन्तर उठती रहती हैं। राग-द्वेषरूपी भयंकर जलचर इसमें निवास करते हैं वह रति-अरतिरूपी अत्यन्त खारे जलसे परिपूर्ण है जिसमें शुभ-अशुभरूपी चोर विचरते हैं, अतएव मैं मुनिरूपी जहाजमें बैठ कर, इस भयानक सागरको पुरुषार्थपूर्वक पार करना चाहता हूँ। पिताके वचन मानकर

त्रिलोकमंडन हाथी एकबार पागल हो जानेसे नगरमें हाहाकार मचा देता है।
भरतजीको देखकर ही हाथीको जातिस्मरण हो जानेसे वह शांत हो जाता है।

बहुत दिन राज्य-संपदा भोगी, प्रजाका पुत्रके समान पालन किया गृहस्थ-धर्माचरण कर साधुओंकी सेवा की। अब तो जो पिताने किया वही मैं करूँगा'। ऐसा कहकर भरत वैराग्यसे उठ खड़े हुए।

लक्ष्मणने भरतका हाथ पकड़ लिया। समस्त भावजोंने आकर भरतको अनेक प्रकारसे समझाया तथा उन्हें जल-क्रीड़ा निमित्त सरोवर पर ले गईं। भरतजीने किसी पर जल न डाल, निर्मल जलसे स्नान कर शुद्ध वस्त्र पहन भगवानकी पूजा की। इसी समय त्रैलोक्यमण्डन हाथी (रावणका हाथी जो लंका जीतनेके पश्चात् रामचंद्रजी उस पर बैठकर अयोध्या आए थे।) एकाएक बन्धन तोड़, भयंकर शब्द करता हुआ, नगरका दरवाजा तोड़ भरतके पास आकर परम शान्तरूप होकर खड़ा हो गया। पूर्व-जन्मका स्मरण होनेसे वह मनमें विचारने लगा कि 'भरत मेरा परम मित्र है छठवें स्वर्गमें हम दोनों एक ही साथ थे। पुण्यके प्रसादसे यह उत्तम पुरुष हुआ तथा अशुभ कर्मके योगसे मैं हाथी हुआ हूँ। धिक्कार है मेरे इस पशु जन्मको; परन्तु अब शोक करनेसे क्या लाभ? अब ऐसा उपाय करूँ कि जिससे आत्मकल्याण हो'। ऐसा मनमें विचारता हुआ गजेन्द्र पापोंसे विरक्त हो पुण्योपार्जनमें दत्तचित्त हुआ।

श्रीराम-लक्ष्मणने धर्म-ध्यानमें लवलीन रावणके गजराज (त्रैलोक्यमंडन)को विविध आभूषणोंसे सुशोभित कर उस पर भरत, सीता एवम् विशल्याको बिठाया और नगरमें ले आये। हाथी अन्न-जल त्यागकर पुनः भरतके समीप आकर ध्यानारूढ़ खड़ा हो गया। महावतगण अनेक प्रकारसे हाथीको रिझाने लगे परन्तु वह निश्चल ही खड़ा रहा। श्रीराम-लक्ष्मण गजराजकी यह चेष्टा देख चिन्तित हुए।

दूसरी ओर, इसी समय भगवान श्री देशभूषण-कुलभूषण नामके त्रिकालदर्शी केवली (त्रिकालदर्शी) कि जिनका श्रीराम-लक्ष्मणने वंशस्थलगिरि

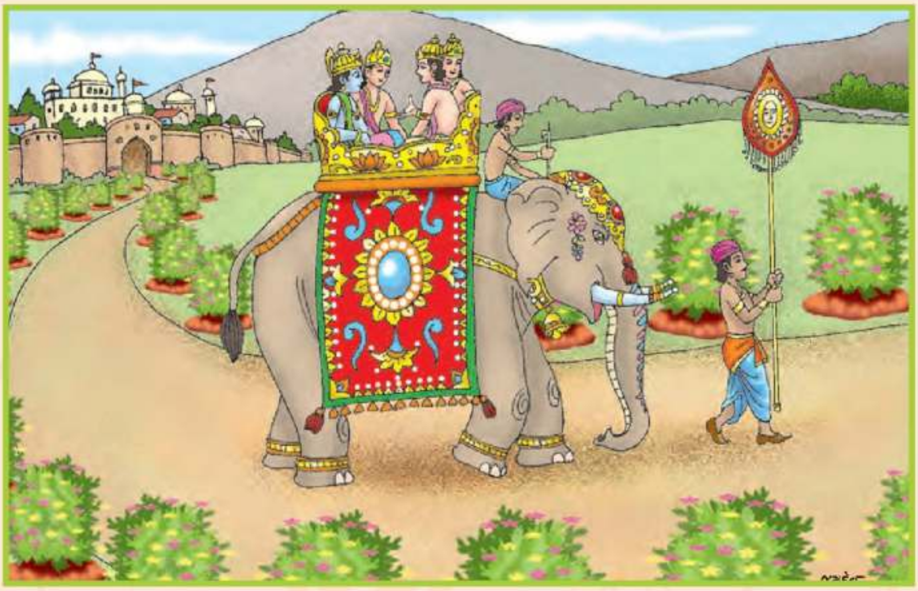

रामचन्द्रजी अपने भाईयोंके साथ त्रिलोकमंडन हाथी पर बैठकर देशभूषण-कूलभूषण केवली भगवानके दर्शनको जाते हैं।

पर उपसर्ग निवारण किया था; वे अयोध्याके महेन्द्रोदय नामक वनमें आकर विराजमान हुए।

श्रीराम-लक्ष्मण केवली भगवान श्री कूलभूषण-देशभूषणका आगमन सुन भरत और परिवारके साथ, सुग्रीवादि अनेक विद्याधरों सहित त्रैलोक्यमंडन हाथी पर बैठकर उनकी वन्दनाके निमित्त महेन्द्रोदय वनमें आए और केवली भगवानको नमस्कार कर सब अपने योग्य स्थानमें अत्यन्त विनयपूर्वक बैठे। भगवानका उपदेश श्रवण कर लक्ष्मणने केवलीसे पूछा कि 'हे प्रभो! त्रैलोक्यमंडन हाथी किस कारण बन्धन तोड़ क्रोधित हुआ? फिर तत्काल शांत भावको क्यों प्राप्त हुआ?' केवली देशभूषण भगवानकी दिव्य-ध्वनि खिरी कि 'प्रथम तो यह गज लोगोंकी अत्यन्त भीड़ देख क्षोभित हुआ, तदन्तर भरतको देख एकाएक पूर्वभवकी स्मृति होनेसे उन्हें देव-पर्यायका साथी जान उनके पास शान्तदशाको प्राप्त हुआ'। ऐसा कहकर भगवानने 'भरत एवं त्रैलोक्यमंडन हाथीके सूर्योदय तथा चँद्रोदय नामक जन्मसे लेकर

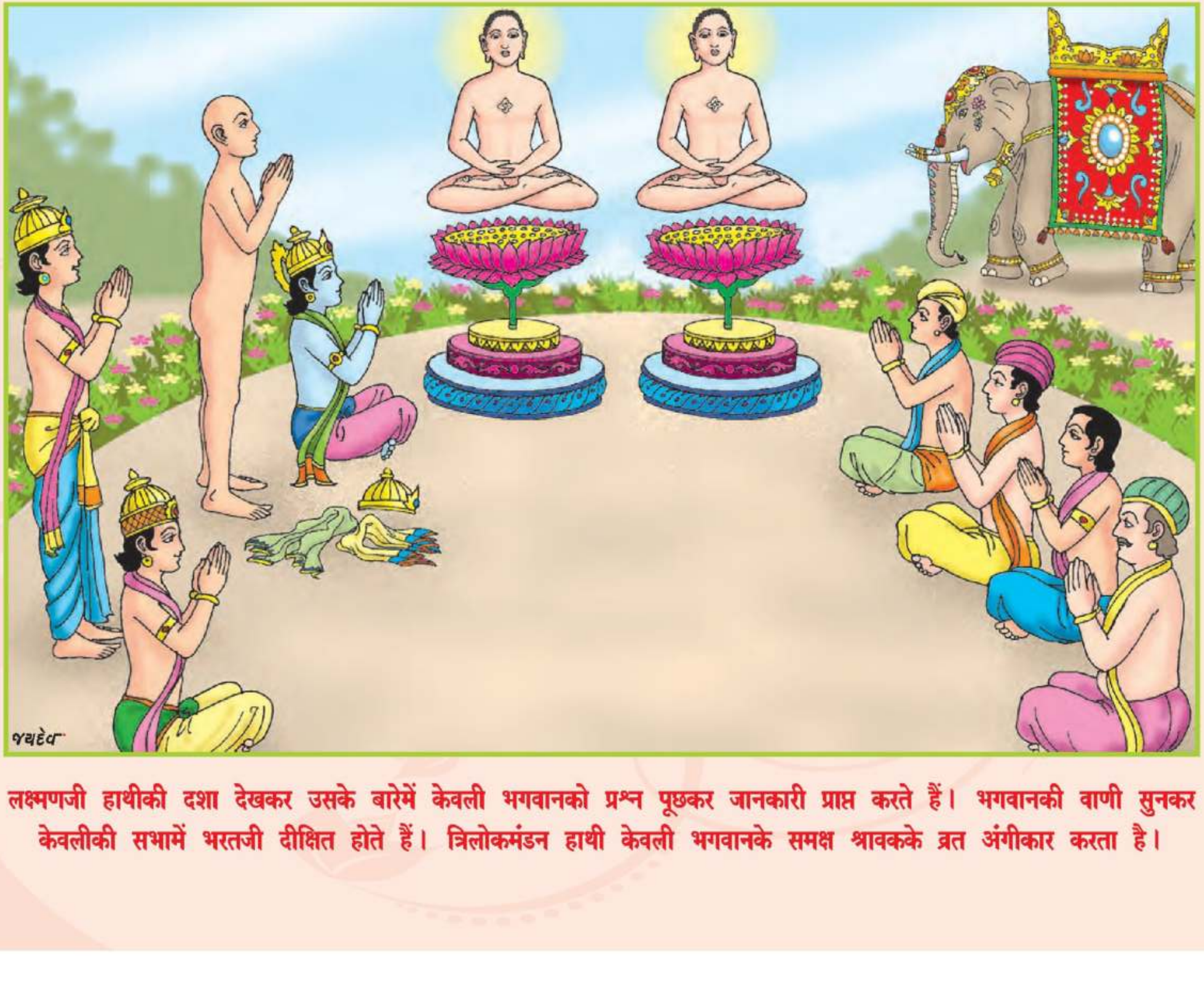

लक्ष्मणजी हाथीकी दशा देखकर उसके बारेमें केवली भगवानको प्रश्न पूछकर जानकारी प्राप्त करते हैं। भगवानकी वाणी सुनकर केवलीकी सभामें भरतजी दीक्षित होते हैं। त्रिलोकमंडन हाथी केवली भगवानके समक्ष श्रावकके व्रत अंगीकार करता है।

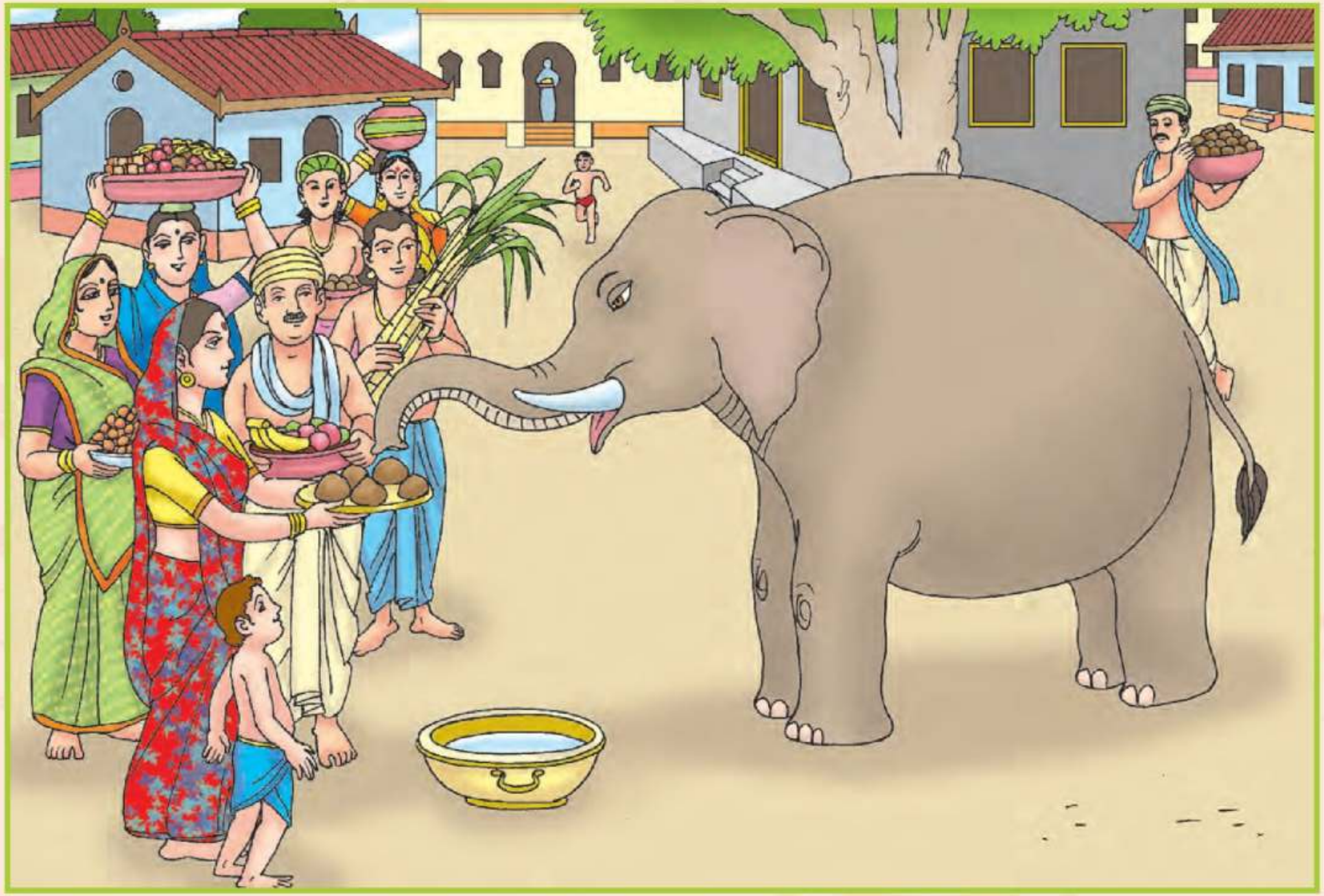

वैरागी श्रावक हाथी त्रिलोकमंडन मासोपवासके पारणाके हेतु नमरमें आनेसे नगरजन उसको अत्यंत भक्तिपूर्वक शुद्ध आहार-जलसे पारणा कराते हैं।

अभिराम तथा मृदुमतिके जन्म तकका समस्त वृतान्त कहा और बतलाया कि मृदुमतिका जीव त्रैलोक्यमंडन गज तथा अभिरामका जीव भरत हुआ है ये दोनों देव एवं मनुष्य पर्यायमें अनेक जन्मोंसे परस्पर मित्र हैं। भरत चरमशरीरी हैं; अब जन्म न लेंगे तथा यह गज श्रावकके व्रत पाल समाधिमरण कर स्वर्गमें देव होगा। यह भी निकट भव्य है'।

श्री देशभूषण केवलीकी दिव्यध्वनि द्वारा भरत तथा त्रैलोक्यमंडन गजके अनेक पूर्व जन्मोंका सविस्तार वृत्तान्त सुनकर श्रीराम-लक्ष्मण आदि परम आश्चर्यको प्राप्त हुए। सुयोग पाकर नरेन्द्र भरत परम वैराग्यको प्राप्त हो केवली भगवानको प्रणाम कर दिगम्बर मुनि हुए। उनके साथ अन्य अनेकों नृपति संसारसे उदास होकर मुनि हुए। भरतको वैराग्य लेते देख माता केकई प्रथम तो अत्यन्त विलाप करने लगी, परन्तु श्रीराम-लक्ष्मण द्वारा समाधान होने पर स्त्री-पर्यायको धिक्कारती हुई संसारसे विरक्त होकर पृथवीमती आर्यिकाके निकट अन्य तीन सौ स्त्रीयाँ सहित आर्यिका हुई। त्रैलोक्यमंडनने केवलीके निकट श्रावकके व्रत धारण किए। वह भी कभी पक्षोपवास कभी मासोपवास कर सूखे पत्तोंसे पारणा करने लगा। कभी गाँवमें जाकर शुद्ध अन्न-जलसे पारणा करता था। इस प्रकार वह वैराग्यरूपी खूंटेसे बंध कर उग्र तपश्चचरण करने लगा। अन्तिम समय आहारको त्याग समाधिमरण कर छठवें स्वर्गमें देव हुआ और भविष्यमें वह मोक्ष जाएगा।

महामुनि भरत पृथ्वी सदृश क्षमा धारण कर शरीरसे निर्ममत्व हो उग्र तप करने लगे। तप तथा संयमके प्रभावसे शुक्लध्यान प्रकट हुआ और कैवल्य प्राप्त कर अनेक जीवोंको मोक्षमार्ग पर लगा, मोक्ष-पद पाया। उनके साथ अन्य जो राजा मुनि हुए थे, उनमेंसे कई मोक्ष गए, कई अहमिन्द्र हुए एवं अनेकों स्वर्गमें उत्कृष्ट देव हुए।

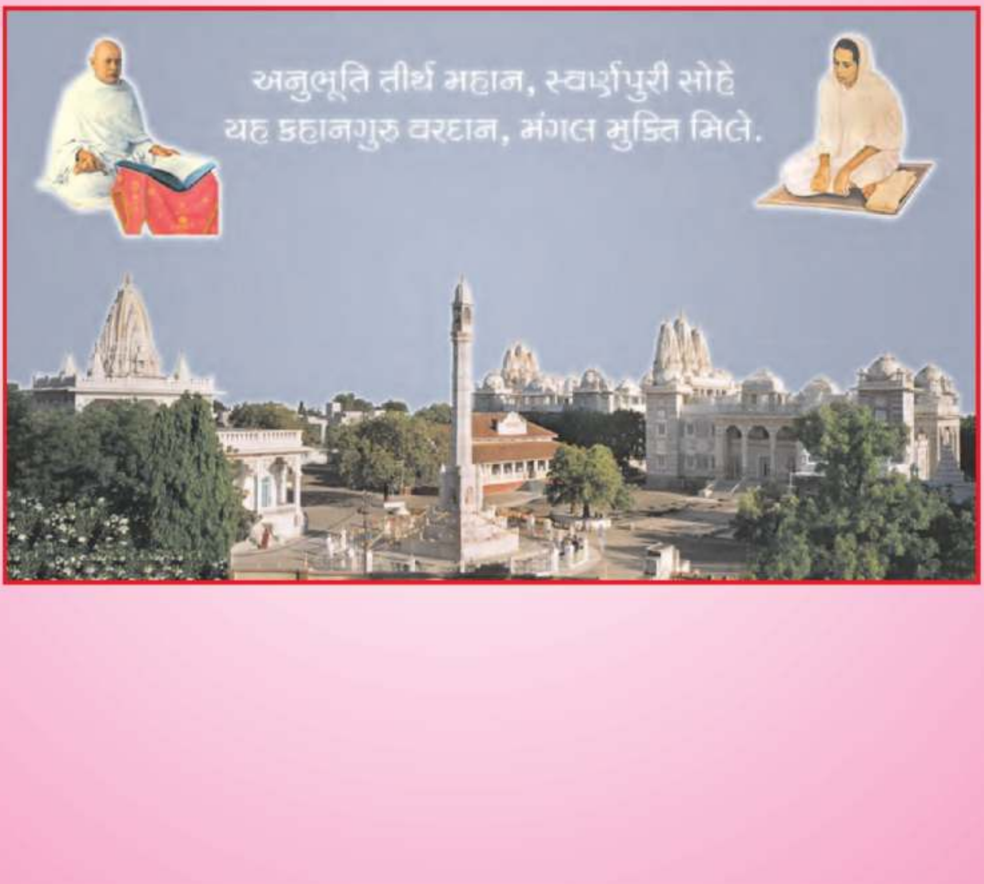
અનુભૂતિ તીર્થ મહાન, સ્વર્ણપુરી સોહે
યહ કહાનગુરુ વરદાન, મંગલ મુક્તિ મિલે.